...र शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

...दयोग

...गयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अप्रैल 2000 अंक 1

...प्रकाशन

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु०	8.00
वार्षिक शुल्क	रु०	75.00
द्विवार्षिक	रु०	140.00
आजीवन	रु०	750.00

इस अंक में

- नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय 1
- अमृतकण 2
- मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्हि पुरुषो वेद (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 11
- क्रिया योग द्वारा कुण्डलिनी जागरण
  आचार्य चन्द्रहास शर्मा 16
- अनादि महासिद्ध योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज 21
  पूर्णचन्द्र पंत शास्त्री
- किमास्ति योगः
  द्वारका प्रसाद शर्मा 28
- योग के लिए परमावश्यक वार्ता
  डा० स्वामी केशवाचार्य 33
- श्री गुरु वन्दना
  जितेन्द्र कुमार 36
- मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः
  ब्र० विजय प्रकाश पालीवाल 37
- उपनिषदीय तात्विक कथायें
  डा० विजय सिंह 39
- योग और उसके फल
  स्वामी श्री शिवानन्दजी 41
- पुराणों में योगदर्शन
  हरि प्रसाद शास्त्री 47
- नीली छत वाली माँ
  रुक्मिणी वर्मा 50
- सद्‌गुरु कृपा हि केवलम्
  अंशुमान देव 52
- स्वास्थ्य-चर्चा 53

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 33 अंक 1	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः। तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवत् महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	अप्रैल 2000

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

एको हँसो भुवनस्यास्य मध्ये
स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः।
तमेव विदित्वाति मृत्युम् अत्येति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/१५)

भावार्थ

इस ब्रह्माण्ड के बीच में जो एक प्रकाशस्वरूप परमात्मा परिपूर्ण है। वही जल में स्थित अग्नि है। उसे जानकर ही मनुष्य मृत्युरूप संसार--समुद्र से सर्वथा पार हो जाता है। दिव्य परमधाम की प्राप्ति के लिए दूसरा मार्ग नहीं है।

अमृत कण

गुशब्दस्त्वन्धकारे स्याद् कशब्दस्तन्निरोधके।
अन्धकार निरोधित्वाद् गुरूरित्यभिधीयते।।

(गुरुगीता-१९)

'गु' शब्द का अर्थ है 'अन्धकार' और 'रु' शब्द का अर्थ है, उसका निरोध या विनाश करने वाला। इस प्रकार अन्धकार का निरोधक होने से वह 'गुरु' पद से वाच्य है।

***

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति।।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित्।।

सच्चा गुरु हमारे मिथ्या बोध को नष्ट कर देता है और हमें शास्त्रों के सच्चे अर्थ का बोध करा देता है, सुगति और कुगति के मार्गों तथा पुण्य और पाप का भेद प्रकट कर देता है, कर्तव्य और अकर्तव्य का भेद समझा देता है। उसके बिना और कोई भी हमें संसार-सागर से पार नहीं करा सकता।

***

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते
प्रवर्तयत्यन्यजनं च निःस्पृहः।
स एव सेव्य स्वहितैषिणा गुरुः
स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम्।।

यदि व्यक्ति अपना हित चाहता है तो उसे ऐसे गुरु का वरण करना चाहिये कि जो स्वयं पापरहित मार्ग पर चलता है और निष्काम भाव से दूसरों को भी उसी पथ पर चलाता है, स्वयं तर चुका है और दूसरों को तारने में समर्थ है।

***

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्।।

(श्री मद्‌भागवत् ११/३/२१)

जो परमोच्च कल्याण का मार्ग जानना चाहता हो उसे गुरुदेव की शरण लेनी ही चाहिये। गुरुदेव ऐसे हों जो शब्द-ब्रह्म में-वेदादि शास्त्रों में निष्णात हो तथा नित्य-निरन्तर परब्रह्म में प्रतिष्ठित रहते हों और जिनका चित्त पूर्णतः शान्त हो चुका है।

विशेष लेख

मातृवान् पितृवान् आचार्यवान्हि पुरुषो वेद

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! मनुष्य को परमात्मा की प्राप्ति कराने मे जिन का हाथ होता है वे है–आदर्श माता, आदर्श पिता तथा आदर्श सद्गुरु। जिस मनुष्य को अच्छी माँ, अच्छे पिता और अच्छे सद्गुरु मिले हों वह परमात्मा को पा जाया करता है। बालक की पहली गुरु माँ होती है। मैने तुम्हे बताया था कि हमारे एक योगी बच्चे ने पहले ही संदेश दे दिया था कि मेरी माता को, जिसके पेट मे मै आ रहा हूँ, मेरा पिता बिल्कुल क्रोध न दिलाये। मातृवान् व्यक्ति कौन होता है ? इसका उत्तर हमारे शास्त्रों मे मिलता है–**प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृवान्** अर्थात् जिसकी माता प्रशस्ता हो, धार्मिक विचारो की हो तथा विदुषी हो वह व्यक्ति मातृवान् कहलाता है। जब माँ के उदर मे बच्चा आ जाये तो माता को सात्विक व पौष्टिक भोजन जैसे घी, दूध आदि से युक्त भोजन देना चाहिये। उसे ब्राह्मी, शंखपुष्पी, शतावरी आदि का पाक खिलाना चाहिये इससे बच्चा गर्भ मे ही पुष्टि पा जाता है। ऐसा बच्चा जीवन भर बीमार नही होता। गर्भावस्था मे माँ को उपनिषद, गीता आदि सुनाने चाहिये ताकि उसके मन मे दिव्यता आ जाये। उसे तीर्थाटन कराये जाने चाहिये। ऋषियो तथा महापुरुषों के दर्शन कराये जाने चाहिये। माँ गर्भावस्था में यदि मन्त्र जाप करती है, योगियो तथा महापुरुषो के चरित्र पढ़ती है, शास्त्र श्रवण या मनन करती है तो इसका प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। बच्चा स्वाभाविक ही धार्मिक, भगवान का भक्त तथा योगी होगा। गर्भिणी को कभी भी क्रोध नही दिलाना चाहिये और न ही उसे सताना चाहिये। गर्भावस्था मे माँ को मिर्च, मसाले व अत्यधिक खट्टे पदार्थ नही खाने चाहिये। इससे उदरस्थ बालक को कष्ट होता है। उसे अपने आहार-विहार को सन्तुलित रखना चाहिये। गर्भ से बाहर आने के बाद माँ उसे मदालसा की तरह कान मे उपदेश करे–

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जनोऽसि संसारमाया परिवर्जितोऽसि।

इस प्रकार उपदेश करके मदालसा ने अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञानी बना दिया था। इसलिये आदर्श माँ को चाहिये इसी प्रकार से उसे ज्ञानोपदेश करे। इस प्रकार से बच्चे मे उज्ज्वल संस्कार डाले जायें तो ऐसा बच्चा आगे चलकर योगी बन जाया करता है। गर्भावस्था मे माँ को सिनेमा-थियेटर नही जाना चाहिये। वासनिक तथा रसिक दृश्य नहीं देखने चाहिये। आजकल गर्भिणी स्त्री को मनोरंजन के लिये सिनेमा, नाच तथा अन्य कई प्रकार के अश्लील दृश्य दिखाये जाते है। बच्चे पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। उसमे भी वासनिक संस्कार पेट मे ही पड़ जाते है। प्राचीन काल मे मातायें बच्चे को पेट मे ही संस्कारवान बनाती थी। महाभारत मे एक प्रकरण आता है। युद्ध के मैदान मे द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की। इस चक्रव्यूह को अर्जुन के अतिरिक्त कोई तोड़ना नही जानता था। कौरव पक्ष के सैनिक अर्जुन को ललकार कर दूसरी दिशा मे ले गये। पाण्डवों को चिन्ता व्यापने लगी। उस समय अभिमन्यु अपने ताऊ युधिष्ठिर से कहने लगा–"ताऊजी ! आप चिन्ता न करें। इसके छः चक्र मैं तोड़ दूँगा। सातवें चक्र को तोड़ने का मुझे ज्ञान नही है। युधिष्ठिर ने पूछा–"छः चक्र तुम कैसे तोड़ दोगे ? तुम्हें किसने सिखाया है ?" अभिमन्यु कहने लगा–"मैं जब अपनी माँ सुभद्रा के पेट मे था, तब मेरे पिता अर्जुन ने उसे चक्रव्यूह तोड़ने के बारे मे समझाया था। मै भी पेट मे सब वृत्तान्त

सुन रहा था। सातवें चक्र के विषय में जब मेरे पिता समझा रहे थे, मेरी माँ को नींद आ गई। इस कारण से मैं भी सातवें चक्र के विषय में जानने से वंचित रह गया। ''युधिष्ठिर ने कहा–ठीक है। तुम छः चक्र तोड़ लो सातवाँ हम लोग देख लेंगे'' भीम कहने लगा–''सातवाँ चक्र मैं तोड़ दूँगा।'' अभिमन्यु ने छः चक्र तो तोड़ लिये किन्तु सातवाँ चक्र तोड़ न सका और मारा गया। अस्तु ! इस प्रकार होता है गर्भिणी को दी गई शिक्षा का बच्चे पर प्रभाव। बच्चे को बाल्यावस्था में भक्ति की बातें, धर्म की बातें, सदाचार की बातें, गुरु भक्ति की बातें बतानी चाहिये। इसका बहुत अच्छा प्रभाव बालक के मन पर पड़ता है और यह प्रभाव जीवन भर रहता है। आजकल स्त्रियाँ बच्चे को भूतप्रेत, चुड़ैल, डंकिनी का डर दिखाया करती हैं, बच्चा बचपन से ही डरपोक बन जाता है। बच्चा माँ पर पूर्ण विश्वास करता है। माँ ही उसका सब कुछ होती है इसलिये उसकी अच्छी व बुरी शिक्षा का उस पर तत्काल व गहरा प्रभाव पड़ता है। संसार में जितने भी महापुरुष हुये हैं वे सभी माता की सद्‌शिक्षा के कारण ही महान हुये। गोपी चन्द, भर्तृहरि आदि बहुत से योगी इस पृथ्वी पर अजर अमर होकर विचरण कर रहे हैं। उनको भी बनाने वाली माँ ही थी। गोपी चन्द की माँ उसके राजसी वैभव तथा ठाट-बाट युक्त जीवन होने के बावजूद भी उसके विषय में चिन्तित रहा करती थी। उनकी चिन्ता को भाँपते हुये एक दिन गोपी चन्द ने पूछा–''माँ ! क्या बात है, आप उदास दिखाई देती हैं। किसी सेवक अथवा और किसी ने आप की आज्ञा की अवहेलना की है या किसी ने आज्ञा का पालन नहीं किया है। आप तुरन्त मुझे बतावें मैं उस व्यक्ति को तुरन्त उचित दण्ड दूँगा। उसकी माँ कहने लगी–''नहीं बेटा ! मुझे किसी और के कारण परेशानी नहीं है। मुझे तो तेरे विषय में ही चिन्ता है। तेरा यह ठाट बाट, सुन्दर शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा। इसलिये यदि तू योगी बन जाये तो अजर अमर हो जायेगा और काल के मुख से बच जायेगा।'' इस प्रकार से माँ ने उसे जगत की नश्वरता का बोध कराया और उसे योगी बनने का उपदेश दिया। माँ के वचनों को मान कर गोपी चन्द ने सब राज पाट छोड़ कर योगी गुरु की शरण ले ली और अपने को कृतार्थ बना लिया। गोपी चन्द आज अजर अमर होकर सिद्ध योगी के रूप में पूजित हो रहे हैं। यह होता है माँ के उपदेश का बच्चे पर प्रभाव ! इस प्रकार की मातायें ही अपने बच्चे का सच्चा हित करती हैं।

माता की शिक्षा के बाद पिता की बारी आती है। आजकल माता-पिता बच्चों को बचपन में ही नाचना सिखाते हैं। सिनेमा, नाटक देखने भेज देते हैं। बच्चा बचपन में ही रसिकता की बातें सीख लेता है और उसमें रसिकता के ही संस्कार दृढ़ हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि युवावस्था से पहले-पहले ही उसके शरीर में शक्ति का ह्रास हो जाता है और कुछ भी करने की योग्यता उसमें नहीं होती। आजकल की शिक्षा प्रणाली भी मानव को पतन की ओर ले जाने वाली है। पाठशालाओं में भी चरित्र गठन की शिक्षा का अभाव होता जा रहा है। हमारे ऋषियों का प्राचीन सिद्धान्त है। उन्होंने चार आश्रमों की व्यवस्था बनाई थी। उनमें पहला आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम था। पिता-सात-आठ वर्ष के बच्चे को गुरुकुल में भेज देता था। वहाँ पर सात्विक आहार खिलाया जाता था, गौओं का दूध पिलाया जाता था। उन्हें योगासन कराये जाते थे। प्राणायाम की शिक्षा दी जाती थी। व्यायाम करने तथा प्राणायाम करने से वीर्य सारे शरीर में व्यापक हो जाता है। जिससे वह ओज-तेज से भर जाता है। उसे वासना के दर्शन कराये ही नहीं जाते थे। इससे वह ऊर्ध्वरेतस बन जाता था। वासना का चिन्तन करने से वीर्य नाभिमण्डल में आ जाता है, जिसका पतन अवश्यम्भावी रहता है। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी ने ऐसे आर्ष सिद्धान्त चलाये थे जिन पर चलकर मनुष्य योगी बन सकता है। उन्होंने लड़के लड़कियों के लिये अलग-अलग गुरुकुलों की

स्थापना की थी। इस प्रकार उन्होंने हमें ऋषियों की प्राचीन पद्धति पर चलना सिखाया। गुरुकुलों में ब्रह्मचारी वेद पढ़ता था, उपनिषद पढ़ता था, ब्रह्मचर्य से रहता था। सालवन जिला करनाल में एक बार हमारे सामने एक महात्मा आये थे। इनके साथ में चार ब्रह्मचारी थे। वे बड़े तेजस्वी मालूम पड़ते थे। वहाँ पर कई और विद्वान भी आये थे। वे छोटे-छोटे लड़के धारा प्रवाह से अनुप्रास युक्त संस्कृत बोल रहे थे। महात्मा जी से पूछा-इनमें ऐसी योग्यता कैसे आ गई ? महात्मा भी सत्यवादी थे। उन्होंने कहा-ये सब जंगल में रहते हैं। साग-पात व मोटा अनाज खाते हैं। इन्हें गौओं का दूध पिलाया जाता है। इन्हें आसन व प्राणायाम कराया जाता है इसलिये इनके जीवन में ओज-तेज भर गया है।

प्राचीन काल में पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम का नियम था। नैष्ठिक ब्रह्मचारी अड़तालीस वर्ष तक भी रह सकता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में वह पूर्ण विद्वान, पूर्ण योगी बन जाता था। दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि की योग्यता उसमें उस समय से ही आ जाती थी। उसको गुरुदेव योग के अंगों की साधना भी साथ-साथ कराया करते थे। इसके बाद ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया करता था। जिसने इतने दिनों तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया हो गृहस्थ में पत्नी के सम्पर्क में आने पर भी वासना उसके अन्दर नहीं होती। केवल मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिये पत्नी से सम्पर्क करते थे। उन्हें भोगों में कोई आनन्द नहीं आता था। उससे पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम बना रहता था। जो लोग वासना भोगी होते हैं, उनकी आपस में रोज लड़ाई रहती थी। अस्तु!

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जन्म से लेकर पाँचवे वर्ष तक बालक को माता सद् शिक्षा दे। वस्तुतः माँ का प्यार पाया हुआ बालक संसार में सबसे प्यार करता है। माता का दर्जा संसार में सबसे बड़ा है। **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"** अर्थात् माता और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती है। जब पाण्डव वनवास काल में वन में विचरण कर रहे थे तो धर्मराज ने यक्ष का रूप धारण करके उनसे प्रश्न पूछना चाहा। अर्जुन भीम आदि ने उसके प्रश्नों की परवाह नहीं की और वे यक्ष के कोप भाजन बने। अन्त में युधिष्ठिर पानी लेने गया। यक्ष ने उनसे भी प्रश्नों का उत्तर देने को कहा। युधिष्ठर उत्तर देने को तैयार हुये। यक्ष ने उनसे कई प्रश्न किये। सभी का ठीक उत्तर युधिष्ठिर ने दे दिया। उन पूछे गये प्रश्नों में एक प्रश्न था कि भूमि से कौन बड़ा है ? तो युधिष्ठिर ने जवाब में कहा-**"माता गुरुतरा भूमेः"** भूमि से भी बड़ी माँ है। इस प्रकार से माँ की श्रेष्ठता बताई गई है। माँ द्वारा शिक्षा दे चुकने के बाद पिता बालक को सद् शिक्षा देता था। पिता का कर्तव्य है कि वह बालक को ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलाये। इसके लिये योग्य से योग्य आचार्य के पास उसे छोड़ दे। पिता को यह देखना चाहिये कि बच्चे में शुभ संस्कार भरे आ रहे हैं या नहीं जिन बच्चों को पिता का संरक्षण प्राप्त नहीं होता वे प्रायः मार्ग से भटक जाया करते हैं। इसलिये यदि किसी को विद्वान व आध्यात्मिक पिता मिल जाये वह बालक सच्चे अर्थों में पितृवान हो जाता है। पिता अपने आदर्श युक्त आचरण से बच्चे में आदर्श संस्कार डाले। इस प्रकार करने पर उस बालक की जीवन भित्ति मजबूत हो जाती है। पिता का संस्कार व आशीर्वाद पाकर व्यक्ति जीवन के क्षेत्र में उतरता है। सदाचार की शिक्षा बालक पहले पिता से सीखता है तत्पश्चात गुरुकुल में उसे दृढ़ता मिलती है। माता पिता को अपने बच्चों में बाल्यावस्था में ही सद्गुण भर देने चाहिये। अपने से बड़ों को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की शिक्षा देनी चाहिये। बड़ों को प्रणाम करने से उनके आशीर्वाद स्वरूप आयु, विद्या, यश और बल की प्राप्ति होती है। मनु जी महाराज कहते है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।

आजकल ऐसे माँ-बाप कम ही है जो अपने बच्चों को सदाचार व शिष्टाचार सिखाते हों। बच्चों को बड़ों को प्रणाम करना सिखाना चाहिये। प्रणाम करने का मतलब है, बड़ो से शक्ति लेना। आशीर्वाद देने का अर्थ है शक्ति देना। अच्छे माँ बाप अपने बच्चों को सिखाते है-बेटा! बड़ों को चरण छू कर प्रणाम करो। इस प्रकार बच्चों को प्रणाम करने की आदत बन जाती है। मुझे एक बच्चे की याद आई। अमृतसर में एक लड़का था, उसका नाम था घुग्घू। वह अपने से बड़े सभी को प्रणाम किया करता था। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी ने उसके इस गुण पर प्रसन्न होकर अपने गले से एक फूल माला उतार कर दे दी थी। इसके फलस्वरूप उसे भगवान श्री कृष्ण के बराबर दर्शन होने लगे। वह श्री कृष्ण को अपना "दोस्त" कहता था। उसकी माँ श्री प्रभु जी से कहने लगी-"प्रभु जी! घुग्घू को तो भगवान कृष्ण के दर्शन होते है, आप मुझे भी भगवान कृष्ण के दर्शन कराइये।" श्री प्रभु जी कहने लगे-"भगवान का दर्शन तो तुम्हे घुग्घू ही करायेगा। इस पर घुग्घू कहने लगा-नहीं! प्रभु जी ! माँ मुझे मिठाई खाने को पैसे नही देती है।" उसकी माँ ने उसे मिठाई खाने के लिये पैसे दे दिये। घुग्घू कहने लगा-"जाओ, तुम्हें भी दर्शन हो जायेंगे। उसकी माँ किसी काम से अपने मकान के छत पर गई, वहाँ देखती है कि भगवान श्री कृष्ण कुर्सी पर विराजमान है। वह मन में सोचने लगी-"क्यों न मैं अपने परिवार के सारे लोगो को दर्शन करा दूँ"। वह भागती-भागती नीचे आई और सब को बुलाकर छत पर ले गई। वे लोग जब छत पर पहुँचे तो भगवान अन्तर्हित हो चुके थे। घुग्घू की माँ कहने लगी-प्रभु जी ! यह तो कुछ नहीं हुआ। प्रभु जी कहने लगे दर्शन हो गया, इतना क्या कम है ? वह कहने लगी "प्रभु जी! अच्छी तरह से दर्शन करा दे"। घुग्घू कहने लगा-"प्रभु जी! माँ ने मुझे दो ही पैसे दिये थे, तो दर्शन भी इतने ही हुये"। यह सब प्रणाम करने का फल घुग्घू को मिला। योगी की वाणी अमोघ होती है। "सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्" उन्हें कोई प्रणाम करता है तो वे कहते है-चिरंजीव ! ' इस प्रकार कहने पर आशीर्वाद फलवती हो जाता है और मनुष्य दीर्घायु बनता है। घुग्घू के माता पिता ने घुग्घू में बड़ों को प्रणाम करने का संस्कार भर दिया। इस सद् गुण को देखकर श्री प्रभु जी के मन में आह्लाद आया और उसका जो परिणाम हुआ वह मैंने तुम्हे बता दिया। गुरुकुल में रहने वाला छात्र पूर्णरूप से गुरु के नियन्त्रण तथा अनुशासन में रहता था। इस प्रकार से वह पूर्ण गुरु निष्ठ बन जाता था। आचार्य ही उसका शिक्षा एवं दीक्षा गुरु हुआ करता था। गुरुकुल में ही वह प्राणायाम ध्यान एवं समाधि के अभ्यास में पारंगत हो जाया करता था। ब्रह्मचर्य पालन एवं प्राणायाम से वह महावीर्यवान बन जाता था। उसके जीवन की नींव गुरुकुल में ही मजबूत बन चुकी होती थी। ऐसा व्यक्ति ही प्राणायाम का अधिकारी होता है, त्राटक का अधिकारी होता है तथा अन्य कठिन साधनाओं का भी अधिकारी वही होता है। एक व्यक्ति जो बाजार में जाकर बेहद खटाई खाता है, मिर्च खाता है, खान-पान भी जिसका शुद्ध नही है जो वासना भोगी है, ऐसा व्यक्ति यदि प्राणायाम व त्राटक आदि क्रियाओं की बड़ाई सुनकर उन्हें करने की कोशिश करता है तो वह दुष्परिणाम को भी पायेगा। जो साधक है, विरक्त है, इन्द्रिय लोलुप नहीं है, गुरुनिष्ठ है वह अन्तर्जगत में प्रवेश पाता है। आचार्य के पास रहकर ही बालक तप, त्याग और अनुशासित जीवन जीना सीख जाता है इसी अवस्था में गुरुदेव उसे यम नियमों की साधना कराते हैं। जो गुरुदेव के थपेड़े खाकर अपनी साधना में रत रहता है वह आगे चलकर योगी बन जाता है।

कोई भाग्यवान संस्कारी व्यक्ति ही आदर्श माता, पिता एवं सच्चे सद्‌गुरु को प्राप्त करता है और जीवन में इन तीनों के द्वारा समय पर दी गयी शिक्षा-दीक्षा से वह यथार्थ मानव बनकर योगी हो जाता है।

❋❋❋

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

दादा गुरूदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज

आज मोहि गुरुवर की सुधि आई!

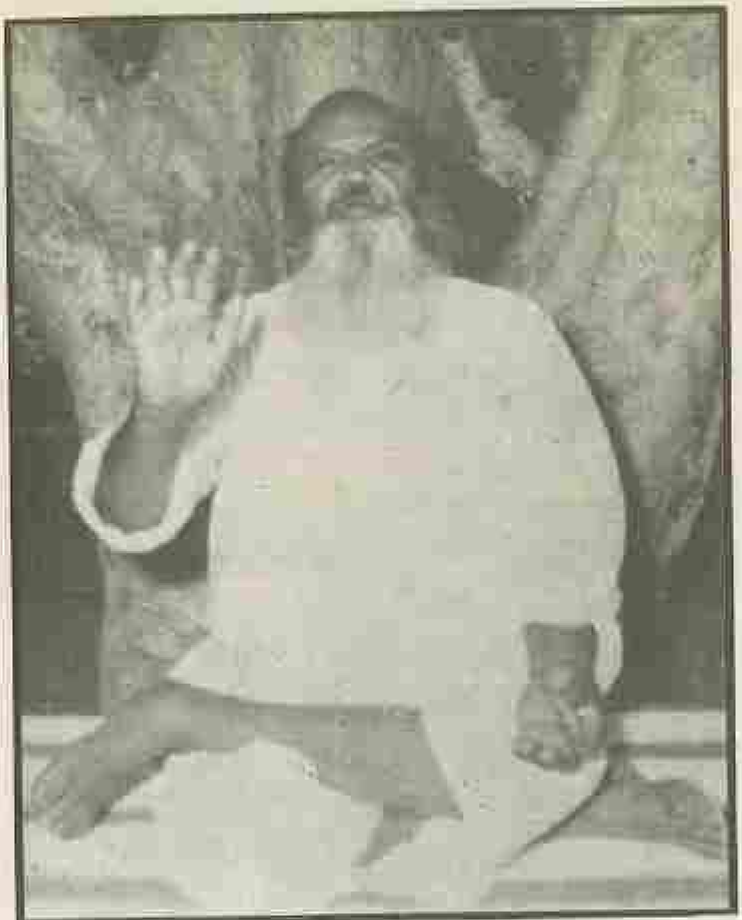

गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

आज मोहि गुरुवर की सुधि आई।
महा मोह के अंधकार मे, 'चन्द्र' किरन दिखलाई।।
दीख परयो फिर वही आश्रम, मौलश्री अमराई।
धीरज देत देत संबल को, बार-बार समझाई।।
लल्ला-लल्ला मुख सौ बोलत, लेवत हृदय लगाई।।
ब्रह्मा विष्णु महेश धरे नित, ध्यान चरन चित लाई।
महिमा पार न पावे जिन्ह सोई "मोहन" छवि सुखदाई।।
हूक उठे मन तुम्हरे दरस को, कँह कँह खोजो जाई।
'भुवनइन्द्र' गुरु 'चन्द्र' जपत ही भव सागर तर जाई।।

चरण रजकण
भुवनेन्द्र झा

महान गुरुओं के निर्माता कृपानिकेतन महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज

'ईशावास्यमिदं सर्वम्' के सिद्धान्तानुसार परमपिता परमात्मा इस जगत के कण-कण में विद्यमान है। इस प्रकार सब प्राणियों के भीतर-बाहर सर्वत्र है। ईश्वर के साकार निराकार दोनों रूप है, इस बात को स्पष्ट शब्दो मे वेद में कहा गया है। गीता में भी भगवान अपने दोनों रूपों को स्वीकारते है। निराकार ब्रह्म अपनी व्यापक महिमा से प्रतिष्ठित है। उस रूप में उन्हें अक्षर, अव्यय, अविनाशी अमृत पद, परम पद आदि नामों से वेदों में जाना जाता है। गीता में अर्जुन को तात्विक बात समझाते हुये भगवान कहते है, "हे अर्जुन ! ब्रह्म की प्रतिष्ठा, अमृतत्व, अव्ययत्व, शाश्वत धर्म एवं ऐकान्तिक सुख की प्रतिष्ठा मुझ वासुदेव कृष्ण में है।" अर्थात् मै निराकार होते हुये भी साकार में प्रतिष्ठित रहता हूँ। युगों-युगों से भगवान समय-समय पर साकार रूप धारण करते चले आये है। जब वे साकार होकर लीलायें करते है तो उनकी दिव्य शक्तियों को देखकर प्राणी प्रभावित होकर उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है। नित्य चेतन से सम्बन्ध जोड़ने का अर्थ है कर्मबन्ध की शिथिलता एवं मोक्ष का मार्ग पाना। जब-जब भगवान योग के दिव्य ज्ञान का प्रकाश करने आते है तब उनका नाम सद्गुरू होता है। परा चेतना के अवतरण की इस श्रृंखला मे सद्गुरू सदाशिव सत्ता में प्रतिष्ठित रहने वाले संसार के प्राणियों के लिये नित्य योग ज्ञान का अमृत बांटने वाले महाप्रभु रामलाल जी महाराज का नाम योगी समाज में उनके भक्तों द्वारा अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है। महाप्रभु रामलाल जी महाराज एकदेशीय शरीरधारी व्यक्ति का नाम नही है। वे तो उस सत्ता व शक्ति का नाम है जो अपनी महिमा से सर्वत्र व्याप्त रहते है। यद्यपि इनका नाम जन सामान्य में कम लोग जानते हैं, किन्तु आप ने भारतीय समाज को जो योग की अमर देन प्रदान की है वह सदा ही स्मरणीय रहेगा। अपनी योगमयी दृष्टिपात से ही प्राणियों के कल्याण करने मे समर्थ महाप्रभुजी ने भारत भूमि को अनेक महापुरुष प्रदान किये है। भारत में सुविख्यात योगियों के जीवन के मूल में देखने पर पता चलता है कि प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की करुण कृपा ही उनकी उच्च स्थिति का कारण बनी। महाप्रभु जी ऐसे सर्वसमर्थ योगेश्वर है जो संसार के लिये योग गुरुओं का निर्माण करते है। उन महान गुरुओं से ही संसार का कल्याण होता रहा है और होता रहेगा।

श्री प्रभु जी ने हरिहरानन्द जैसे अनेकों व्यक्तियों को अपने अमोघ आशीर्वाद एवं संकल्प से ही क्षण में तत्व विजयी अजर-अमर सिद्ध बनाकर हिमालय में महायोगियों के बीच स्थान दे दिया है। जिनके द्वारा संसार मे योग तत्व का प्रकाश हुआ है ऐसे अपने कुछ प्रधान शिष्यों के द्वारा मनुष्यों का कल्याण कराया है। विरक्त वेशधारी श्री गोपालानन्द जी महाराज ने १९२०-३० के दशक में लाहौर में योग का उत्कृष्ट प्रचार किया है उस समय योग प्रचारकों की संख्या नगण्य थी। जीवन तत्व

साधन, योगासन, प्राणायाम तथा अन्य विविध क्रियाओं के साथ-साथ साधक समुदाय में संकीर्तन के माध्यम से मन की एकाग्रता प्रदान कर उन्होंने अध्यात्म लहर जगाई थी। नेति क्रिया से सम्बन्धित 'नेत्र ज्योति प्रकाशिनी नेति' जैसी अद्भुत पुस्तिका का प्रकाशन कराकर उन्होंने योग साधकों एवं रोगियों का बहुत बड़ा उपकार किया है। नेति क्रिया पर लिखी वैज्ञानिक व्याख्या युक्त ऐसी पुस्तक कहीं पर भी देखने को नहीं मिलती है। उत्तर भारत में अखण्ड संकीर्तन का प्रचलन ब्र. गोपालानन्द जी के द्वारा हुआ है। ब्र. गोपालानन्द जी के सानिध्य में अनेकों की जीवन धारा बदल गई। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के सर्वाधिक प्रिय शिष्यों में योगिराज श्री मुल्खराज जी हुये हैं जिन्हें उन्होंने अनेक वर्षों तक तुरीय स्थिति प्रदान कर योग की उच्चतम स्थिति में अवस्थित कर दिया था। और श्री प्रभु जी के नैपाल धाम को (लीलावसान) लौटने के बाद योग साधना आश्रम ऋषिकेश, छेहरटा, योग अभ्यास आश्रम कनखल आदि का निपुणता पूर्वक संचालन कर साधक समुदाय को योगामृत पान कराया है। गृहस्थ वेश में रहते हुये भी योग की विभूतियों से विभूषित इस महापुरुष की महानता का कारण भी श्री प्रभु जी की करुण कृपा ही रही है। अन्यथा गृह कार्यों में व्यस्त व उलझे हुये व्यक्ति को हिमालय के सिद्धयोगियों की दुर्लभ सम्पदा कैसे प्राप्त हो सकती है ?

श्री प्रभु जी की प्रधान शिष्याओं में योगिनी ऋषिदेवी तथा द्रौपदी माता का नाम परम आदर से लिया जाता है। ये दोनों भी योग की उत्कृष्ट भूमिकाओं से विभूषित थी। इन के योग आश्रम आज भी अमृतसर शहर में योग जिज्ञासुओं का मार्ग प्रशस्त कर उन्हें परम शान्ति की ओर अग्रसर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी के शिष्यों में जिन महान योगियों ने संसार में सर्वाधिक योग का प्रचार किया है उनमें प्राण धन सद्गुरूदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का नाम मूर्धन्य स्थान पर आता है।

इस शताब्दी के उत्तरार्ध में सिद्धयोग का महाभियान चलाने वाले इन महापुरुष के नाम से योगी समाज चिर परिचित है। अपने गुरुदेव श्री प्रभु जी द्वारा स्थापित श्री सिद्धगुफा में ही स्थायी निवास करते हुये इन्होंने योग प्रचार का प्रथम बिगुल बजाया था। शैशवावस्था से ही कृष्ण एकत्व को प्राप्त करने वाले इन महापुरुष के रोम-रोम में भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र का निवास था। इनकी तपोपूत जीवन शैली, साधना, योगनिष्ठा एवं परा गुरु भक्ति के कारण श्री प्रभु जी ने इन्हें वनों में जाने से रोक लिया और कहा-अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है इसलिये तुम हमारे शेष संकल्प को पूरा करोगे।' श्री प्रभु जी ने इन्हें योग की समस्त सम्पदा प्रदान कर सिद्धयोग के अमर सन्देश को संस्कारी जीवों तक पहुँचाने का श्रमसाध्य कार्य सौंपा था। श्री गुरुदेव ने निर्मम एवं निरहंकार होकर योग प्रचार के कार्य को बढ़ाया। वे अपने व्याख्यानों में कहा करते थे-मैं तो श्री प्रभु जी का एक सिपाही हूँ। उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ किन्तु करण-कारण तो स्वयं श्री प्रभु जी ही हैं।"

सब कुछ स्वयं करने कराने की सामर्थ्य होने के बावजूद वे स्वयं को 'अकिंचन' कहा करते थे। यही है सच्चे कर्मयोगी की निशानी। **'यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते'** की उक्ति उनमें पूर्णतया फलितार्थ थी। गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने प्रशासनिक कार्यों में भी अपनी उपस्थित से समाज को उपकृत किया है। अपने शिष्यों व अन्य योगियों के आग्रह को देखते हुये

१९७८-७९ के वर्षों में केन्द्र सरकार द्वारा संचालित 'योग और प्राकृतिक अनुसंधान विभाग' में अध्यक्षीय पद को समलंकृत करते हुये 'योग' को विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का प्रस्ताव पास कराकर छात्र जीवन से ही 'योग विद्या' की नींव डालने का सुकृत आप के द्वारा ही हुआ। उसी के परिणाम स्वरूप आज दिल्ली जैसे प्रबुद्ध प्रदेश में माध्यमिक स्तर तक योग को अनिवार्य विषय के रूप में रखा गया है। श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू होने के कारण अपने शिष्यों में योग के शास्त्रीय सिद्धान्तों को हृदयंगम कराकर उन्हें ध्यान योग के क्रियात्मक पक्ष का अभ्यास कराया है। ध्यानयोग ही समस्त क्लेशों के उच्छेद का एक मात्र उपाय है इस सिद्धान्त को अपने शिष्यों में कूट-कूट कर भर दिया है। उनका हमेशा ही यह संकल्प रहा है कि योग के दिव्यामृत का पान कर कलियुगी पामर जीव अपने को आत्मोत्थान की ओर ले जाकर अन्ततः अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जायें।

आनन्दकन्द श्री प्रभु जी ने मानव के सर्वतोमुखी कल्याण के लिये जिन लुप्त योग क्रियाओं का सूत्रपात किया था उन्हें गुरूदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ने आगे जन सामान्य में प्रचारित कर अपने गुरूदेव के संकल्प को पूरा किया है। श्री प्रभुजी ने आज के कलिमलग्रसित अल्पवीर्य एवं क्षीण मानस शक्ति वाले मानव को अपने मन से उद्घाटित कर 'जीवन तत्व साधन' जैसी अनेक अमर क्रियायें दी है। इन क्रियाओं से साधना के मूल साधन इस शरीर को सशक्त बनाकर मनुष्य अपने जीवनीय शक्ति को बढ़ाकर नव जीवन पाकर शनैःशनै योग की उच्चतर भूमियों में प्रवेश पा जाता है। योग की पूर्णता को पाने के लिये साधक को अनिर्विण्णचित्त होकर लम्बे समय तक साधना करने की आवश्यकता होती है। अपने संकल्प मात्र से ही जीवों का कल्याण करने वाले महाप्रभु जी ने अनेकों ऐसे योगियों को बनाया है जिनका समाज में काफी नाम है किन्तु लोग नहीं जानते कि किस प्रकार से श्री प्रभु जी की करुणा कृपा इसमें कारण रही है। खेचरी मुद्रा की रहस्यमयी क्रिया की साधना से हताश ब्राह्मण बालक को शक्तिपात से खेचरी सिद्ध कराने वाले श्री प्रभु जी ही थे। यही बालक आगे चलकर देवरहा बाबा के नाम से उत्तर भारत में निवृत्ति मार्ग के योगियों में सुप्रसिद्ध पा गये। सन् १९८९ में प्रयाग कुम्भ पर्व पर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के साथ हम लोग भी डेढ़ सौ, दो सौ की संख्या में देवरहा बाबा के कैम्प में गये थे। अपने गुरु भाई को अत्याधिक आदर प्रदर्शित करने के बाद बाबा ने अपने श्रीमुख से प्रभु जी की कृपा का वर्णन किया था और गद्गद् कण्ठ से भाव विभोर होते हुये कहा था कि मेरे जीवन में उन्हीं की कृपा से सब कुछ है। देवरहा बाबा के शिष्यों को भी यह तो ज्ञात ही है कि वे श्री प्रभु जी रामलाल जी महाराज को कितना मानते थे भले ही वे लोग उन पर हुई कृपा के विषय में न जानते हों। मुरादाबाद के पास ही जंगल के एकान्त स्थान पर प्रभु जी ने खेचरी सिद्धि का आशीर्वाद उन्हें दे दिया था। अध्यात्म-प्रचारकों में बाल योगेश्वर एवं सतपाल महाराज का नाम भी आता है। वे लोग भी योग का काफी प्रचार करते है। उनके पिता श्री 'हंस' महाराज थे। वे ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के मित्र थे तथा श्री प्रभु जी के योग दीक्षा प्राप्त शिष्य थे। योग ध्यान की उनकी उच्चतर स्थिति श्री प्रभु जी की

कृपा से बनी। किन्हीं कारणों से श्री प्रभु जी ने उन्हें अपने पास आने-जाने को मना कर दिया था किन्तु यह कह दिया था कि-''हमने जो दे दिया-सो दे दिया तुम अपनी उन्नति अलग रहकर करते रहो''। हमारी कुरुक्षेत्र की गुरु बहिन वेदवती ने हरिद्वार प्रेमनगर में जाकर उनके पूजा गृह में श्री प्रभु रामलाल जी का चित्र (स्वरूप) देखा है। इनके आश्रमों से प्रकाशित भजनों की पुस्तक में भी पहले के संस्करणों में हमारे आश्रम में गाई जाने वाली दैनिक आरती **'चरणारविन्दम् गुरूदेव नमामि गुरूदेव शरणं गुरूदेव नमामि'** प्रकाशित होती रही है। लेखक ने इसे स्वयं देखा भी है। इस प्रकार से इस परम्परा के भी आदि गुरु भी श्री प्रभु जी ही है। हरिद्वार में भारत माता मन्दिर के पास वैष्णव देवी का विशाल मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर लाल देवी ट्रस्ट का है। गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज अपने मुखारविन्द से बतलाया करते थे कि इन्होंने ऋषिकेश योग साधन आश्रम में अपने पति देव के साथ श्री प्रभु जी से योग दीक्षा प्राप्त की थी। प्रभु कृपा एवं शक्तिपात से उनकी बहुत उच्च स्थिति ध्यान की बन गई थी। संभवतः इनके पतिदेव का नाम देवकी नन्दन था। किन्तु कुछ बात ऐसी बन गई जिससे श्री प्रभु जी खिन्न से हो गये तथा उन्हें भी अपने पास आने-जाने से रोक सा ही दिया। श्री प्रभु जी का एक नियम था कि जो साधक मन्मुखता से चलने लगता अथवा उसमे अहंकार की मात्रा दीखती तो ऐसे लोगों को वे अपने से दूर कर दिया करते थे किन्तु दी हुई शक्ति व स्थिति को वापिस नहीं लिया करते थे।

योगिनी लाल देवी का अमृतसर में बहुत बड़ा सत्संग भवन 'लाल भवन' नाम से स्थापित है। उनके शिष्य वर्ग में वे देवी शक्ति से युक्त विभूति के रूप में मानी जाती हैं। अब उनका शरीर पात हो चुका है। जब वे जीवित थीं तो गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज उनके आग्रह पर उनके आश्रम गये थे। पाँच- सात शिष्य हम लोग भी उनके साथ थे। उन्होंने श्री प्रभु जी के शिष्यत्व एवं कृपा की बात को स्वीकारा था। यद्यपि विस्तृत बातें नहीं हो सकी थी क्योंकि उनके यहाँ कोई उत्सव चल रहा था और उनके लाखों शिष्य लम्बी कतारों में उनकी पूजा अर्चना को खड़े थे। अस्तु।

ऊपर जिन दो-तीन अध्यात्म-पुरुषों का वर्णन किया है उनके विषय में सामान्य लोग नहीं जानते कि उनकी महानता का क्या कारण रहा है। क्या इसकी भूमिका में कोई घोरतम तपस्या थी अथवा कोई जन्मान्तर का बहुत बड़ा सुकृत ? वस्तुतः देखा जाये तो इनके जीवन मे जो प्रकाश मिला उसका मूल कारण है सिद्ध गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त ध्यान योग की दीक्षा और उनका तीव्रतम शक्ति पात। उनके अमोघ संकल्प से उनकी ऊँची योग्य स्थितियाँ बनी और उसका प्रत्यक्ष प्रभाव इस जीवन में लोगों को देखने को मिला। तीव्र लगन से किया गया ध्यानाभ्यास ईश्वर एवं गुरुदेव की सेवा व आराधना से प्राप्त पुण्य का फल इसी जन्म में मिल जाया करता है। ऐसे अनेक योगी प्रभु जी की कृपा से धन्य हो गये हैं और उन्होंने संसार में योग प्रचार का काम किया है। इस छोटे से लेख में सब का वर्णन नहीं दिया जा सकता, उनकी कृपा अवर्णनीय है।

श्री प्रभु जी पृथ्वी मण्डल पर आकर हिमालय के योगियों की गुप्त विधाओं को अधिकारियों में प्रचारित करना चाहते थे। किन्तु कुछेक को छोड़कर उन्हें उत्तम अधिकारी नहीं मिले जिन्हें वे ये

सिखाएं और उन्हें संसार में बांटने की आज्ञा देते। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने श्री मुख से कहा करते थे कि प्रभु जी ने जितनी यौगिक क्रियाओं का प्रचार किया और कराया संसार मे वह वही तक सीमित है। इससे आगे किसी भी योग प्रचारक ने आगे की गुप्त क्रियाओं को जनसामान्य में उद्‌घाटित नहीं किया है। क्योंकि वे लोग भी इन क्रियाओं के ठीक जानकार नहीं थे।

बज्रोली मुद्रा के द्वारा वीर्य कोष को उर्ध्वमुखी बनाकर उसे सहस्रार तक ले जाने जैसी यौगिक क्रियाओं का क्रियात्मक ज्ञान योग प्रचारको मे भी नही है। क्योंकि ये क्रियायें श्री प्रभु जी ने इने गिने साधकों को गुप्त रूप से ही बताई थी।

महाप्रभु जी की योग परम्परा में उनके शिष्य प्रशिष्यो के द्वारा योग विद्या का अनवरत प्रचार चल रहा है। इस समय भारत में फैले योग प्रचारक इसी परम्परा के ही अधिक है। योगिराज मुल्खराज जी महाराज के पश्चात उनके कई शिष्य योग प्रचार को अक्षुण्य बनाये हुये है। इनके मुख्य शिष्यो मे स्व. श्री देवी दयाल जी के प्रचार कार्य को कदापि विस्मृत नही किया जा सकता। योग चिकित्सा के क्षेत्र मे उन्होंने अदम्य उत्साह एवं परिश्रम से कार्य किया है। इसके लिये उन्होंने पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली आदि प्रान्तों के बड़े-बड़े प्रत्येक शहर मे योग अभ्यास आश्रमों की स्थापना की है। मुल्खराज जी महाराज के ही दूसरे प्रिय सुपात्र शिष्य प्रो. चमन लाल कपूर जी होशियारपुर में आश्रम बनाकर प्रभु जी की महिमा एवं योग सन्देश को फैलाने में बड़ी तत्परता एवं समर्पित भाव से जुटे हुये है। इसी क्रम मे श्री रामप्यारे जी महाराज अमृतसर छहरटा से योग का सन्देश जन मानस में फैला रहे है। जिससे समाज का उपकार हो रहा है। महाप्रभु रामलाल जी महाराज के एक और प्रिय शिष्य श्री नरसिंह मूर्ति जी महाराज, जो आंध्र प्रदेश के वासी थे, ने भी योग का दक्षिण भारत में काफी प्रचार किया है, अब उनके शिष्य गण इस कार्य को आगे बढ़ा रहे है। सद्‌गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से योग दीक्षा प्राप्त उनके शिष्यों की भी लम्बी श्रृंखला है जो देश-विदेश मे योग का अमर सन्देश पहुँचाने मे प्रयासरत है। अस्तु !

इस छोटे से लेख में यह बताने का प्रयास किया गया है कि प्रभु जी इस सहस्राब्द में योग का सूर्य बन कर आये जिससे योग का मुरझाया कमल पुनः खिल उठा है। और उनका यह संकल्प कि **'योग के माध्यम से जन-जन का कल्याण हो'** निरन्तर पूर्णत्व की ओर अबाध-गति से प्रवाहमान है। श्री प्रभु रामलालजी का यह प्रकट शरीर श्री रामनवमी के पावन पर्व पर आविर्भूत हुआ है। रामनवमी के दिन जन्म लेने के कारण इनके पूज्य पिता प्रकाण्ड ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी ने इनका परम पावन नाम 'रामलाल' रखा है। बड़े-बड़े सिद्ध, महामुनि, देवता इस अवसर पर उनकी महिमा का गान कर उत्सव मनाते है। हम सब अबोध बच्चों का उनके प्राकट्य दिवस श्री राम नवमी के पावन अवसर पर उनके चरण कमलों में कोटि-कोटि दण्डवत साष्टांग प्रणाम है।

***

क्रिया योग द्वारा कुण्डलिनी जागरण

-प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा

क्रिया-योग द्वारा ही वृत्ति निरोध होता है। वृत्तियों का प्रवाह संस्कार चक्र के अनुसार सतत् बहिर्मुखी होता रहता है। जैसे समुद्र की एक लहर दूसरी लहर को जन्म देती है, दूसरी लहर तीसरी लहर को जन्म देती है। इस प्रकार यह सिलसिला निरन्तर चलता ही चला जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप सत-रज और तमोगुणमयी प्रमाण विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप में क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों की शान्त और उदित स्थितियाँ नये-नये संस्कार तैयार कर देती हैं। इन संस्कारों के फलस्वरूप जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि, सुख-दुःख तथा रागद्वेष आदि हुआ करते हैं। क्रियायोग के साधन द्वारा वृत्तियों का आत्मतत्व को ध्येय और लक्ष्य बनाकर अन्तर्मुखी प्रवाह चल पड़ता है। बहिर्मुखी प्रवाह से प्राणशक्ति का निरन्तर ह्रास हो रहा था। जैसे ही वृत्तियों का अन्तर्मुखी प्रवाह होने लगता है, प्राणिक ऊर्जा का क्षय रुकने लगता है और अभ्यास करते-करते एक ऐसी अवस्था की उपलब्धि होती है, जिसमें वृत्ति स्वयं शक्ति का रूप धारण कर लेती है। वृत्तियों का एक लक्ष्योन्मुख होने पर पहले मन में एकाग्रता बढ़ती है फिर शनैः शनैः प्राणों को साथ लेकर मन लक्ष्य की ओर अग्रसर हो जाता है। लक्ष्य पर पहुँचकर मन के साथ प्राण लक्ष्य में समाहित हो जाते हैं। इस अवस्था को सन्तों ने उन्मनि रहनि, लयावस्था या समाधि की अवस्था कहा है। यह शक्ति और कुछ नहीं कुण्डलिनी महादेवी की जाग्रत अवस्था है। उसके सोने पर वृत्ति प्रवाह की अवस्था रहती है। कुण्डलिनी का जागरण होने पर शरीर नीरोग, इन्द्रियाँ शक्ति सम्पन्न, मन प्रसन्न तथा नाना प्रकार की सूक्ष्म शक्तियों से भरपूर और बुद्धि, ज्ञान वैराग्य की भावना से ओत-प्रोत हो जाती है। अभ्यास और वैराग्य का एक साथ अवलम्बन लेते रहने से जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि आदि भवरोगों से साधक छुटकारा पा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने तपः, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान इन तीन प्रक्रियाओं को क्रिया योग के अन्तर्गत परिभाषित किया है। तप का सामान्य अर्थ सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान हानि-लाभ को समतायुक्त चित्त से सहन करना होता है। प्राणायाम सबसे बड़ा तप है। प्राणायाम से चित्त के अन्दर छिपे रोग के कारणबीज (संस्कार) उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे धातुओं का मल अग्नि पर धातुओं को तपाने से नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य साधना भी तप है। इच्छा और कामनाओं के मल की शुद्धि ब्रह्मचर्य साधना से होती है। उससे इस शरीर की सप्तम धातु रज-वीर्य की शक्ति सुरक्षित होकर ओज, तेज और ज्योति में परिवर्तित हो जाती है। अन्ततोगत्वा वीर्य की ब्रह्मसत्ता तक ऊर्ध्वकर्षण की शक्ति का साधन बनता है। स्वाध्याय का अर्थ गुरुप्रदत्त मंत्र का जप अथवा सर्वव्यापक नित्य-शुद्ध, बुद्ध-मुक्त अनन्त ज्ञान, ऐश्वर्य युक्त सत्ता के पवित्र नामों या प्रणवादि का जप तथा गीता, रामायण, वेद उपनिषद् आदि मोक्ष शास्त्रों का मनन करना होता है।

ईश्वर प्रणिधान का तात्पर्य पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ एकनिष्ठ होकर आत्म समर्पण द्वारा

शरणागत हो जाता है। ईश्वर प्रणिधान से लयता द्वारा उसी प्रकार लय योग सिद्ध होता है- जिस प्रकार जल मे नमक मिल जाने पर नमक जल का ही आकार ग्रहण कर लिया करता है। यह क्रिया योग दो प्रकार का होता है। एक वाह्य अभ्यास द्वारा 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' का अनुगामी और दूसरा योगियों की प्राणवल्लभा अधीश्वरी ज्ञानमयी, इच्छामयी और क्रियामयी भगवती कुण्डलिनी के जागने पर आन्तरिक क्रियाओं के रूप में स्वतः गतिशील। समर्थ सद्गुरु की कृपा द्वारा अथवा देवाराधन या मंत्रजप अथवा प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी जागकर स्वतः चक्रों का बेधन करने के लिये क्रियाशील होती है। नाड़ियों के मल को शुद्ध करती हुई प्राणों के विक्षेप को अष्टविध प्राणायामों और सहज कुम्भक द्वारा दूर करती हुई ब्रह्म-विष्णु-महेश इन तीनों ग्रन्थियों को खोलती हुई स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों के पंचकोषात्मक आवरणों को हटाती हुई सहस्रार की ओपरशिव से संगमन करने को उद्यत होती है। उस अवस्था मे साधक के अन्तर्मन मे मंत्र शक्ति का स्वतः उदय होता है। कभी हंसना, कभी रोना, कभी नाचना, कभी शरीर में कम्पन, सिर घूमना, यकायक शरीर ठंडा होना, कभी जलन होने लगना आदि नाना प्रकार से शक्ति की क्रियाओं के लक्षण दिन-रात चलते रहते हैं। हमारे सम्पर्क मे ऐसे अनेक साधक आये हैं जिनमें नाना-प्रकार के सात्विक भावों का उद्रेक होता हुआ देखने में आया है। इन क्रियाओं से शरीर के नाना प्रकार के रोग और मन की चंचलता दूर होती चली जाती है। चित्त की वृत्तियों का निरोध करने के उद्देश्य से ही भगवती कुण्डलिनी ये क्रियायें करवाती है। कभी-कभी अन्दर गहरे में छिपे हुए रोग तथा जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों को भी यह शक्ति उदरावस्था अर्थात् प्रकट करने लगती है। इस प्रकार की स्थिति मे अधिकांश साधक विचलित होकर घबरा उठते है। हालांकि उस अवस्था मे भी अभूतपूर्व दिव्यानन्द का अनुभव होता है। किन्तु साधक को समझ न होने और सिद्धयोग के सत्संग से उन्मुख होने के कारण वस्तु स्थिति को ठीक-ठीक समझने मे भूल हो जाती है। जब यह शक्ति जगती है तो एकान्त चाहती है तथा पूर्ण शुद्धि और पवित्रता का वातावरण चाहती है। जनसंग दोष और आहार-विहार की अशुद्धि होने पर यह शक्ति प्रकुपित भी हो जाया करती है। यदि पूर्ण पवित्र और शुद्ध वातावरण में अथवा श्री गुरु स्थान में रहकर ये क्रियाएँ होने दी जायें तो बाह्य पदार्थों और इन्द्रियों की सहायता के बिना ही निरतिशय आनन्द का प्रवाह अन्दर से झरने की तरह फूट पड़ता है। साधक आत्मानन्द मे इतना निमग्न हो जाता है कि उसे साधना को छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती है। उस अवस्था में रहकर आनन्द भोग करने की वृत्ति का उदय हो जाता है। उस अवस्था को कबीर ने इन शब्दों मे व्यक्त किया है-

'मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, भारी हुई तो क्यों डोले।
बुद्धि कलारी भयी मतवारी, मदवा पी गयी बिन तोले।
हीरा पायो गांठ गठियाओ बाको बार-बार फिर क्यों खोले।

तेरा साहिब है घर मांही फिर बाहर नयना क्यों खोले।।
मन मस्त हुआ तो क्यों डोले।।

इस प्रकार की अवस्था की अवधि प्रत्येक साधक को पूर्वार्जित संस्कारों के भेद से भिन्न-भिन्न होती है। ईश्वर की अभिव्यक्ति उसकी क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और इच्छाशक्ति के द्वारा होती है। पहले क्रियायें स्थूल रूप में हुआ करती हैं। फिर धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई अन्तर्जगत की क्रियायें समाधि में परिणित हो जाती हैं। मन और चित्त शान्त, एकाग्र और समाहित हो जाता है। आत्मस्थ और आत्मवान् होकर मन भी निर्विषय हो जाता है। इस अवस्था की क्रियाओं पर साधक का अपना कोई वश नहीं चलता। यदि वह उन्हें रोकना चाहे तो रुकती नहीं। जब क्रियाओं का कार्य समाप्त हो जाता है तो वे स्वतः रुक जाती हैं। नाड़ी शोधन के लिए जो-जो आसन, बन्ध, मुद्रायें, प्राणायाम अपेक्षित होते हैं शक्ति स्वयं आवश्यकतानुसार करवाती है। उस अवस्था में क्रियाओं के वेग को बीच में रोकने का प्रयास करने से विघ्न उपस्थित होते हैं।

कुण्डलिनी महाशक्ति की क्रियायें शारीरिक, मानसिक और चित्त के स्तर पर आसन-बन्ध-मुद्रा तथा प्राणायाम के रूप में होती है। इन क्रियाओं का उद्देश्य प्राण और चित्त वृत्ति दोनों का ही परस्पर निरोध करना है। प्राणों की कुम्भक अवस्था हो जाती है। प्रथम अवस्था में सूर्य भेदी, उज्जायी, भ्रामरी, शीतली, सीत्कारी, भस्त्रिका तथा केवली कुम्भक आदि प्राणायाम कुण्डलिनी शक्ति स्वयं कराती है। सद्गुरु सत्ता के शक्तिपात से प्राणों के निरोध से वृत्ति निरोध और वृत्ति निरोध द्वारा प्राणों का निरोध होकर समाधि अवस्था आयत्त होती है। इसे ही **सिद्ध साधन या क्रिया-योग** कहते हैं। कुण्डलिनी महाशक्ति माँ की तरह साधक का मंगल करती है। उसकी क्रियायें ही साधक को योग की चरम अवस्था समाधि की ओर ले जाती हैं। साधक का केवल इतना ही पुरुषार्थ है कि वह सर्वतोभाव से अपनी बुद्धि, चित्त, मन और इन्द्रियों को सद्गुरुशक्ति को समर्पित कर दे। जाग्रता शक्ति ही गुरु बन जाया करती है। इसके जागने पर **'योगिनां योग एवं उपाध्याय'** अर्थात् योग साधकों को योग की क्रियायें ही गुरु बन जाती हैं। जागृता कुण्डलिनी स्वतः हठ-मंत्र- लय और राजयोग की अन्त भूमिकाओं का विकास करती हुई साधक को स्वतः यह ज्ञान कराती जाती है कि इस भूमिका के बाद इस भूमिका में चलना है। महाशक्ति ज्ञानवती, क्रियावती और कलावती होने के कारण ज्ञान कराने, क्रियाएँ कराना तथा नाना प्रकार की (गाना, काव्यत्व सूक्ष्म भावों का स्फुरण आदि) कलाओं का विकास करती है। मूलबन्ध उड्डियान बन्ध, जालंधर बन्ध, महामुद्रा, खेचरी, शाम्भवी, बज्रोली आदि बन्ध और मुद्रायें महाशक्ति की कृपा से स्वतः होती हैं। हठयोग की अभ्यास साध्य साधन योग की क्रियायें उपयुक्त मार्ग दर्शक के अभाव में गलत ढंग से करने पर नाना प्रकार के रोग पैदा कर सकती हैं। किन्तु सिद्धानुकम्पा से शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी शक्ति की क्रियायें सभी रोगों को दूर कर देती हैं। ज्ञानवती होने के कारण वह शक्ति साधक के संचित संस्कारों का ज्ञान रखती है। उन संस्कारों का शीघ्र परिपाक और क्षय जिन-जिन उपायों से हो

सकता है उन्ही उपायों को कुण्डलिनी क्रिया रूप मे करने लगती है। महाशक्ति कुण्डलिनी आने वाले संकटों की पूर्व सूचना देकर कभी-कभी साधक की संकट से रक्षा करती है। कभी-कभी माँ की तरह दण्ड देकर साधक को पाप कर्म से हटाती है।

स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान दोनों ही मंत्र योग कहलाते है। ईश्वर के वाचक प्रणवादि पवित्र मंत्रों का अर्थ की भावना करते हुए जप करना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय के फलस्वरूप ईश्वर प्रणिधान होकर योगसिद्ध होता है। जैसा कि महायोगी भगवान वेद व्यास कहते है।-

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्याय मामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात्-स्वाध्याय (मंत्र जप तथा मोक्ष ज्ञान प्रदाता शास्त्रों का मनन) से योग की प्राप्ति होती है। योग का यहाँ अर्थ है-ध्यान और समाधि। ध्यान से शास्त्रों का मनन और मंत्रजप करने से स्वाध्याय और ध्यान, समाधि से परात्पर परम ब्रह्म का प्रकाश होता है। जिससे सभी संस्कार तथा कर्म बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते है। तथा हृदय की जड़-चेतन ग्रन्थि खुल जाती है। इस प्रकार क्रिया-योग से ही अन्तर्जगत मे प्रवेश हो पाता है। हृदय मे ईश्वर की अनुभूति होने को ईश्वर प्रणिधान कहते है। वह ईश्वर अंगुष्ठ मात्र परिमाण मे प्रत्येक प्राणी के अन्दर विद्यमान है। वह क्लेश-कर्म तथा कर्मों के पाप-पुण्य और पाप-पुण्यों के मिले जुले तीनों प्रकार के परिणामों एवं तज्जन्य संस्कारों से रहित, सर्वज्ञता का बीज बन्धन मुक्त पुरुष विशेष है। ईश्वर की हृदय मे अनुभूति होने पर समाधि सिद्धि होती है। चित्त का अपने कारण गुणों मे लय होने से लय योग होता है। प्राणों की कुम्भक अवस्था होने पर लयता आने पर षट्चक्र बेधन होने लगता है। प्राणशक्ति जब आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) मे पहुँचती है, तब मनोलय होता है। मनोलय हो जाने पर, मन के धर्म जो संकल्प-विकल्प है, वे फिर नही रहते और मन एकाग्र होकर आज्ञा चक्र से ऊपर की ओर यात्रा करते हुए सहस्रार चक्र तक गमन करता है। यही पर राजयोग निष्पन्न होता है। वह कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार मे परमशिव मे लय हो जाती है। उसके लय हो जाने पर निर्बीज समाधि हो जाती है। यही दृष्टा की स्वरूप स्थिति है। यही योग की अन्तिम उपलब्धि है। इस स्थिति मे पहुँचकर ही वृत्तियों का पूर्णरूपेण निरोध होता है। वृत्ति निरोध की प्रथम भूमिका मे मन और प्राण इड़ा-पिंगला की गति छोड़कर सुषुम्ना विवर मे प्रवेश कर कुण्डलिनी को साथ लेकर ऊपर के चक्रों की ओर मूलाधार से स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धाख्य आज्ञा, गुरुपद्म, विश्वचक्र तथा सहस्रार चक्र तक की यात्रा मे प्रवृत्त होते है।

ईश्वर, परमशिव, परमगुरु या पुरुषोत्तम का स्थान हृदय है। गीता मे योगेश्वर श्री कृष्ण ने कहा है-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि, यंत्रारूढानि मायया।।

ईश्वर सबके हृदय देश मे स्थित होकर स्वमाया के द्वारा चक्र पर स्थित प्राणी की तरह सभी

प्राणियों को जन्म, जरा, व्याधि-मृत्यु के चक्र में घुमाता रहता है। उस ईश्वर की सर्वतोभावेन शरणग्रहण करके यह जीव कृतकृत्य हो जाता है। हृदय हमारे स्थूल शरीर में रक्त शुद्धि का कार्य करके देहस्थ समस्त नाड़ी मण्डल में रक्त परिभ्रमित करने का कार्य करने के लिए मुट्ठी के आकार का एक यंत्र है। दूसरा हृदय सूक्ष्म शरीर में है। सहस्रार चक्र में स्थित हृदय में रहने वाला ईश्वर ही अपनी कृपा शक्ति द्वारा जीव को कर्म बन्ध विनिर्मुक्त कर अभय पद पर आरूढ़ करता है। श्वेताश्वरोपनिषद् में इस स्थिति की उपलब्धि का फल बताया है-

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।

कुण्डलिनी रूपी अग्नि के जाग्रत हो जाने पर साधकों के शरीर में योगाग्नि के प्रभाव से सभी प्रकार के रोग भस्म हो जाते है। बुढ़ापा, जन्म और मृत्यु भी फिर नहीं होते। जो गुरु, शिष्य के अन्दर योगाग्नि का संदीपन कर सके वही वास्तविक गुरु होता है। केवल चेला-चेली बना लेने से कोई गुरु पद वाच्य नही हो जाता। भगवान श्री कृष्ण के गुरुदेव इसी सामर्थ्य के कारण यथा नाम तथा गुणवाले श्री संदीपन ऋषि थे।

इस प्रकार शक्तिपात रूपी आन्तरिक क्रिया योग के द्वारा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश-ये पंचक्लेश स्थूल से सूक्ष्म और अल्पकाल प्रभावी हो जाते है तथा ईश्वर की शरणागति से विचारानुगत, वितर्कानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत समाधियों की भूमिकाओं की यात्रा करते हुए साधक के चक्रों का बेधन होता जाता है। लाहिड़ी महाशय की परम्परा में क्रियायोग द्वारा समाधि प्राप्त करने का अभ्यास कराया जाता है। प्रणव जप पूर्वक प्राणायाम तथा ध्यानपूर्वक शाम्भवी मुद्रा में यह क्रिया योग कुण्डलिनी जागरण की तीव्र संवेगी प्रक्रिया है। मृदु, मध्य, तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम संवेग के साधकों की सामर्थ्यानुसार क्रिया योग की साधना शीघ्र या देर में सफलता के शिखर तक पहुँचा करती है। कांगड़ा सिद्धयोग आश्रम में कुछ साधकों की तीव्र संवेग के साथ अहर्निश क्रियायोग की साधनाएँ चल रही है। उनको देखकर सिद्धयोग की परम्परा को यथार्थ रूप से समझने में सहायता मिलती है। अन्तर्जगत की स्थितियों का प्राकट्य बड़े पुण्य से होता है। उनका दर्शन भी कम सौभाग्य की बात नहीं है। वास्तविक सिद्धयोग यही है।

***

ईश्वर के अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त भाव हैं। उसे किसी नाम से किसी रूप से और किसी भाव से कोई पुकारे वह सबकी पुकार सुन सकता है; वह सबकी मनःकामना पूरी कर सकता है।

अनादि महासिद्ध योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज

योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज का आविर्भाव सम्वत् १९४५ (सन् १८८८) में चैत्र शुक्ल नवमी (श्री रामनवमी) बृहस्पतिवार को पंजाब के प्रसिद्ध धार्मिक नगर अमृतसर में एक तपस्वी ब्राह्मण कुल में पंडित गंडाराम ज्योतिषी जी के घर पर हुआ। उनकी माता का नाम भागवन्ती देवी था, वे बचपन से ही बड़े प्रतिभावान और योगेश्वर्य सम्पन्न थे। उनकी बाललीलायें बड़ी अलौकिक थी।

तीन वर्ष की अल्पायु मे एक मरणासन्न वृद्धा को दर्शन मात्र से अभय दान देना, आठ वर्ष की आयु मे एक सिद्ध योगिराज द्वारा सम्मानित होना तथा रामतीर्थ मार्ग पर अनेक शरीर धारण करके अपने विरोधियों को परास्त करना, बारह वर्ष की आयु में ज्योतिष और आयुर्वेद शास्त्र में पारंगत हो जाना, श्रवण मात्र से ही सभी शास्त्रीय सिद्धान्तों को कंठस्थ कर लेना, कटोरी मे तेल के स्थान पर जल भरकर उस जल से दीपक जलाना, किसी व्यक्ति के सॉंप या बिच्छू द्वारा डसे जाने पर उसे एक चाँटा लगाकर पूर्ण स्वस्थ कर देना आदि घटनायें आपका अनादि सिद्ध होना प्रमाणित करती हैं।

बचपन से ही उनके मन में योगी महात्माओं के प्रति बड़ा आकर्षण था। वे दर्शन करने के बहाने स्वयं उन महात्माओं को दर्शन देकर उनका कल्याण किया करते थे। प्रबल वैराग्य के कारण चौदह वर्ष की आयु में वे एक दिन चुपके से घर से निकल पड़े और काशी जा पहुँचे। वहाँ पतित पावनी गंगाजी के निर्मल जल में स्नान करके तथा भगवान विश्वनाथ जी के दर्शन करके उन्हें बड़ी शान्ति मिली। दो-तीन दिन तक वे वहाँ गंगा जी में स्नान करके वहीं एकान्त तट पर भजन करते रहे और वहाँ के मन्दिरों के दर्शन करते रहे। रात्रि को धर्मशाला में विश्राम कर लिया करते थे। तीन दिन पश्चात् विद्याध्ययन के लिये अच्छे गुरुकुल की तलाश करते-करते उस समय के प्रकाण्ड विद्वान महा महोपाध्याय पंडित शिवकुमार शास्त्री जी के पास पहुँचे और वहाँ रहकर विद्याध्ययन करने लगे। एक दिन आपने अत्यन्त विनीत भाव से पंडित जी से निवेदन किया–आचार्य जी! मेरी योग विद्या में बड़ी रुचि है इसलिये आप मुझे योग शास्त्र पढ़ाने की कृपा कीजिये। इस पर आचार्य जी बोले–मैं तुम्हें योगशास्त्र पढ़ा तो सकता हूँ पर क्रियात्मक रूप से योगशास्त्र की शिक्षा किसी अनुभवी योगी से ही प्राप्त की जा सकती है। योग विद्या में मेरा क्रियात्मक अनुभव नहीं है। इसलिये इस विषय का अध्ययन में तुम्हें नहीं कराऊँगा। तब प्रभु जी व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयों का अध्ययन करने लगे। आप दिनभर मन लगाकर अध्ययन करते रहते और मध्याह्नोपरान्त ४-५ बजे के लगभग भ्रमण करते हुए गंगातट पर चले जाते थे। और वहाँ साधु महात्माओं के साथ घंटों तक आध्यात्मिक चर्चा करते रहते थे। दैवयोग से वहाँ एक दिन आपका गंगातट पर रहने वाले विश्व

विख्यात सन्त तैलंग स्वामी जी से साक्षात्कार हो गया। उन दिनों उनके यौगिक चमत्कारों की चर्चा काशी नगरी में सर्वत्र फैली हुई थी। वे गंगा जी के जल के ऊपर चलते हुए उसे आराम से पार कर जाते थे और उनके पैर तक जल में डूबते नहीं थे। वे एक महिने तक की जल समाधि लेकर गंगा जी में पड़े रहते थे। उस समय उनकी आयु ३०० वर्ष की थी। वे प्राय: मौन रहते थे तथा किसी से अधिक मिलते-जुलते नहीं थे। यहाँ तक कि अपने प्रिय शिष्य रामकृष्ण परमहंस जी को योगोपदेश देने के लिये उन्होंने कुल १५ मिनट का समय दिया था। श्री प्रभु जी का जब उनसे प्रथम बार साक्षात्कार हुआ तो उन्होंने आपको देखते ही आपके अन्दर छिपे परमतत्व को पहचान लिया था। उन्होंने आपको आदर पूर्वक अपने पास बैठाया और बहुत देर तक आपसे योग विषयक चर्चा करते रहे। उस दिन के बाद प्रभु जी शाम के समय नित्य प्रति उनके पास जाया करते थे और सत्संग का जी भरकर आनन्द लेते थे। लोग यह देखकर आश्चर्य चकित होते थे कि तीन सौ वर्ष की आयु के वे विरक्त सन्त चौदह वर्षीय एक बालक के साथ मित्र का सा व्यवहार करते हुए उसके साथ घण्टों तक आध्यात्मिक चर्चा करते रहते हैं। स्वामी जी का संग प्राप्त करके प्रभु जी बड़े आनन्दित रहा करते थे। संयोगवश एक दिन गंगातट पर भ्रमण करते आपको एक परिचित व्यक्ति ने देख लिया। वह आपके पिताजी का मित्र था और रेलवे में गार्ड था। वह बड़ा प्रेम प्रदर्शित करता हुआ आपसे मिला और प्यार-प्यार में आपसे सारी बातें पूछ ली। जब उसे पता चला कि आप घर से भागकर आये हैं तो उसने बड़े प्यार से समझा बुझाकर आपको घर लौटने के लिये राजी कर दिया। तब वे दोनों उसी रात्रि गाड़ी से अमृतसर को रवाना हो गये और अगले दिन सायंकाल वहाँ पहुँच गये। पं. गंडाराम जी ने अपने मित्र का बड़ा आभार व्यक्त किया। अपने खोये हुए पुत्र को पाकर पं. गंडाराम जी और उनकी धर्म पत्नी के हर्ष का ठिकाना न रहा। पूरे परिवार में प्रसन्नता की लहर फैल गई। किन्तु यह प्रसन्नता का वातावरण अधिक दिन तक नहीं रहा। एक सप्ताह बाद ही प्रभु रामलाल जी पुन: घर से भागकर हरिद्वार चले गये और वहाँ कणखल में रहकर विद्याध्ययन करने लगे। कुछ ही दिनों में आपके घर वालों को आपके हरिद्वार में होने की सूचना मिल गई तो आपके ज्येष्ठ भ्राता पं. तीर्थ राम जी वहाँ पहुँचकर आपको जबरदस्ती घर लिवा लाये।

उनके बढ़ते हुए वैराग्य भाव को देखकर परिवार वाले बड़े चिन्तित रहा करते थे। इन सबको यह भय था कि कहीं उनका पुत्र हमेशा के लिये घर छोड़कर वनों में न चला जाये। उन्होंने उनका विवाह कर देने का निश्चय किया। उनका अनुमान था कि विवाह के पश्चात् उनके पुत्र के विचारों में परिवर्तन आ जायेगा।

इस निश्चय के अनुसार सम्वत् १९६० में १५ वर्ष की अल्पायु में प्रभु जी का विवाह एक कुलीन कन्या सुश्री बालकौर जी के साथ कर दिया गया। विवाह हो जाने पर भी उनके मन में वैराग्य की भावनायें उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उनकी दिनचर्या सन्तों की सी थी। उनका अधिकांश समय शास्त्रों के अध्ययन और मनन में व्यतीत होता था।

उन्ही दिनों प्रभु जी ने पं. बलराम जी की विद्वत्ता की चर्चा सुनी तो वे उनके पास थानेसर (कुरूक्षेत्र) चले गये और उनसे विद्याध्ययन करने लगे। वहाँ उनकी दिनचर्या एक आदर्श शिष्य के समान थी। वे बड़ी लगन से पढ़ते थे और पढ़ाई से अतिरिक्त समय में आचार्य जी की सेवा किया करते थे।

एक दिन वे आचार्य जी के पशुओं के लिये चारा काटने के लिये गये। अचानक वर्षा हो जाने के कारण मार्ग में कीचड़ ही कीचड़ हो गया। सिर पर घास का भारी बोझ होने के कारण वे कई बार फिसलते-फिसलते बचे फिर भी उन्होंने जैसे-तैसे वह चारा आचार्य जी के घर तक पहुँचा दिया। तब अत्यधिक थकावट के कारण वे विश्राम करने लग गये। अत: दोपहर की कक्षा में उपस्थित नहीं हो सके। आचार्य जी ने उन्हें बुलाने के लिये अन्य विद्यार्थियों को भेजा तो वहाँ का विचित्र दृश्य देखकर वे लोग हतप्रभ हो गये।

प्रभु जी भूमि पर लेटे हुए थे और उनके सिर पर अपने फन की छाया किये हुए एक भयंकर काला नाग वहाँ बैठा हुआ था। उन सभी ने साहस कर प्रभु जी को जगा दिया। उनके उठते ही वह नाग भी अदृश्य हो गया।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् प्रभु जी को कुछ धन की आवश्यकता अनुभव हुई। उन्होंने कागज़ पर एक विज्ञापन लिखकर चौराहे पर लगा दिया। उसमें लिखा था-''ज्योतिष के विषय में जिसने जो कुछ पूछना हो वह आकर हम से पूछ सकता है।'' विज्ञापन को पढ़कर अगले ही दिन एक सेठजी आ गये और वे प्रभु जी को अपने घर ले गये। प्रभु जी ने उनकी जन्मपत्री को देखकर उनके वर्तमान एवं भावी जीवन के बारे में सारी बातें सत्य-सत्य बतला दी। उनके जीवन में अब तक घटित हुई घटनायें भी उन्होंने ज्यों की त्यों बतला दी। यह देखकर सेठ बड़ा प्रभावित हुआ। उसने प्रभु जी का बड़ा आदर किया और उन्हें अच्छी दक्षिणा देकर सम्मान पूर्वक विदा किया। उस सेठ से प्रशंसा सुनकर बहुत से लोग वहाँ आने आरम्भ हो गये। आचार्य जी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने प्रभु जी को सभी प्रकार के सेवाकार्य से मुक्त कर दिया और अपने निकट उनका तख्त लगवाकर उन्हें वहीं अपना अध्ययन काम करते हुए ज्योतिष का कार्य भी करते रहने की आज्ञा दी। इस कार्य से होने वाली समस्त आय को प्रभु जी अपने आचार्यजी को भेंट कर दिया करते थे। उनकी दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई ख्याति को देखकर उस पाठशाला के एक छात्र ने सोचा कि जब रामलाल अभी इतनी छोटी आयु में ज्योतिष शास्त्र के फलादेश में इतने प्रवीण हैं तो इनके पिता पं. गंडाराम ज्योतिषी जी निश्चित ही ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान होंगे। अत: उनके पास जाकर ज्योतिष शास्त्र पढ़ना चाहिये।

वह छात्र प्रभु रामलाल जी से किसी बहाने उनके घर का पता पूछकर चुपके से अमृतसर चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने प्रभु जी के पूज्य पिता पं. गंडाराम जी का सादर अभिवादन करके उन्हें अपना परिचय दिया, अपने आने का प्रयोजन बताया तथा प्रभु रामलाल जी का विस्तृत समाचार

पाकर पंडित गंडाराम जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस छात्र को शिष्य रूप में अपने पास रख लिया और अपने ज्येष्ठ पुत्र पं. तीर्थराम को कुरूक्षेत्र भेजकर प्रभु रामलाल जी को घर वापस बुला लिया। अपने पूज्य पिताजी की आज्ञा का पालन करते हुए वे अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर अगले दिन ही अमृतसर लौट आये और उसके बाद विरक्त भाव से दो तीन वर्ष तक घर पर रहे। घर में रहते हुए आपकी दिनचर्या एक विरक्त सन्त की सी थी। आपका सारा समय स्वाध्याय या सत्संग में व्यतीत होता था। सम्वत् १९६४ में आपके पूज्य पिता पं. गंडाराम जी का स्वर्गवास हो गया। इस घटना से उनका वैराग्यभाव और अधिक प्रबल हो गया। अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हो जाने के कुछ ही दिन बाद १९ वर्ष की आयु में आप घर-परिवार त्यागकर योगी गुरू की खोज में हिमालय की यात्रा पर चल पड़े। आप सीधे हरिद्वार गये। एक-दो दिन वहाँ रुककर ऋषीकेश चले गये। वहाँ पंजाब-सिन्ध क्षेत्र में ठहरे। वहाँ से लक्ष्मण झूला होते हुए आपने ब्रह्मपुरी की ओर प्रस्थान किया। रात्रि को प्रसिद्ध वशिष्ठ गुफा में विश्राम किया। अगले दिन प्रातः गंगा जी के परम पावन, निर्मल एवं शीतल जल में स्नान करके आपने गंगाजी के तट पर स्थित एक विस्तृत एवं समतल शिला पर बैठकर कुछ समय ध्यानाभ्यास किया। तदनन्तर भूख-प्यास की परवाह किये बिना आप योगी गुरू की प्राप्ति के लिए अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ लगन से अग्रसर हुए। तीन दिन तक आपको कुछ भी भोजन उपलब्ध नहीं हुआ। फिर भी आप केवल जल पर निर्भर रहकर ब्रह्मपुरी के निर्जन एवं हाथी, शेर आदि हिंसक जन्तुओं से संकुल अत्यन्त भयानक एवं दुर्गम वनों को पार करते हुए आगे बढ़ते रहे। संयोग वश उनकी भेंट लाहोर निवासी गंगाराम नाम के एक विरक्त गृहस्थ से हुई जो कि किसी सिद्ध महापुरुष के दर्शनार्थ घर से निकला हुआ था। बस फिर क्या था। गंगाराम श्री प्रभु जी के साथ हो लिया। दोनों साथ- साथ चलते रहे। उसी रात्रि को आप दोनों हिंसक जीवों के प्रहार के भय से एक वृक्ष पर चढ़कर विश्राम करने लगे तो आपको वहाँ से लगभग एक मील की दूरी पर आग नजर आई तो आप लोग तत्काल उसी दिशा की ओर चल दिये और आधे घण्टे में उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ धूना जल रहा था। और उसके साथ ही एक गुफा थी। गुफा के द्वार के बाहर एक चिमटा गढ़ा हुआ था। अपनी कल्पना को साकार हुई जानकर आप दोनों शान्त भाव से सन्त मिलन की प्रतीक्षा करने लगे। महात्मा जी ने प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में गुफा से बाहर निकल कर दर्शन दिये और उन्हें एक अद्भुत शक्ति सम्पन्न लोटा देते हुए कहा-आप लोग इस लोटे को रखिये वह आपकी हर प्रकार की आवश्यकता को पूरा करेगा। उन्होंने सर्वप्रथम क्षुधानिवृत्ति हेतु लोटे से भोजन व्यवस्था करने को कहा। उनके आदेश से तत्काल भोजन सामग्री आ गई। भोजनोपरान्त गंगाराम ने लोटे से चरस, तम्बाकू तथा अन्यान्य कई चीजें मांगी जो तत्काल उपलब्ध हो गईं। महात्माजी से विस्तृत वार्तालाप हो जाने के बाद प्रभु जी को पता चला कि-वे महात्मा प्रतीकोपासक हैं तथा सिद्धियों को प्राप्त करना ही उनका एक मात्र लक्ष्य है तो उन्होंने वहाँ ठहरना उचित नहीं समझा और वे तत्काल वहाँ से चल दिये। गंगाराम लोटे के मोह में अब कहीं जाना नहीं चाहता था। अतः वहीं रुक गया। आगे चल कर प्रभु

जी की भेंट योगिराज हीरागिरि जी से हुई जो उस पहाड़ की चोटी पर एक गुफा में रहते थे। वे प्रभु जी को ससम्मान अपनी कुटिया पर ले गये और उन्हें अपने पास ठहरा लिया। प्रभु जी को वह स्थान बड़ा पसन्द आया और उन्होंने कुछ दिन वहाँ एकान्त में रहने का निश्चय किया। और उस पहाड़ के सामने वाले पहाड़ पर रहना आरम्भ कर दिया। आप प्रातः तीन बजे ''हर हर महादेव'' की ध्वनि का उच्चारण करते हुए गंगा स्नान को निकल पड़ते थे। उधर हीरागिरिजी भी ''हर हर गंगे'' ध्वनि का उच्चारण करके अपने स्थान से चल पड़ते थे। कुछ दूरी पर दोनों इकट्ठे हो जाते थे और एक साथ गंगा स्नान करते थे। वापसी में आप दोनों जंगल से कन्दमूल एकत्रित कर लेते थे। जिन्हें हीरागिरि जी अपने साथ ले जाकर फलाहार तैयार कर देते थे। मध्याह्न के समय प्रभु जी भी वहाँ पहुँच जाते थे और दोनों एक साथ फलाहार किया करते थे। फलाहार के उपरान्त वे दोनों वहाँ बैठकर कुछ समय तक योग चर्चा किया करते थे। उसके बाद प्रभु जी अपने स्थान को लौट जाते थे। उस पहाड़ के दूसरी ओर एक परिपूर्ण सिद्ध योगिराज भी रहा करते थे। उनका पावन नाम था–कृपालानन्द अवधूत। वे गम्भीर एवं शान्त प्रकृति के विरक्त महात्मा थे और हर समय आत्म स्वरूप में लीन रहा करते थे। वे दिगम्बर रहते थे और इतने अधिक निस्पृही थे कि अपने फलाहार के लिये कन्दमूल की व्यवस्था तक नहीं करते थे। वे कई-कई दिन तक निराहार रहते थे। जब कभी उन्हें भोजन की आवश्यकता अनुभव होती थी तो वे अपनी अन्तर्दृष्टि से यह देख लेते थे कि–इस समय किस महात्मा के यहाँ फलाहार तैयार हो रहा है यह जानकर वे मनोजविता सिद्धि से तत्काल वहाँ उपस्थित होकर भोजन ग्रहण कर लेते थे।

वे हीरागिरि का कल्याण के उद्देश्य से कई दिन तक लगातार भोजन करने के बहाने उसके पास भी जाते रहे और उसके साथ फलाहार का सेवन कर लिया करते थे। हीरागिरि अहंकारी वृत्ति के थे। सम्भवतः योग के आधारभुत अंग यमों और नियमों की साधना न करने के कारण ही वर्षों से योग साधना करते हुए तथा योग में उच्च स्थिति प्राप्त कर लेने पर भी वे राग-द्वेष से मुक्त नहीं हो पाये थे। वे कृपालानन्द जी के योगेश्वर्य को देखकर उनसे ईर्ष्या रखते थे। और उन्हें अपमानित करने की चेष्टा किया करते थे। जिससे बाद में उन्हें स्वयं ही नीचा देखना पड़ता था।

एक बार योगिराज कृपालानन्द जी अपनी एक अंग्रेज शिष्य के साथ वन में विचरण करते हुए वहाँ पधारे। उस समय प्रभु जी भी वही विराजमान थे। प्रभु जी ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। हीरागिरि जी ने भी सम्मान पूर्वक उन्हें आसन ग्रहण करने को कहा। वे बैठ गये। फिर कुछ समय तक योग चर्चा होती रही। चर्चा समाप्त होने पर हीरागिरि ने कृपालानन्द जी से व्यंगपूर्वक कहा–महाराज आप तो बड़े शक्ति सम्पन्न योगिराज हैं। हमारा एक छोटा सा काम तो कर दीजिये।

कृपालानन्द जी सहज शान्ति के साथ बोले–

निस्संकोच कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

हीरानन्द जी बोले-यहाँ से कुछ ही दूरी पर सामने की पहाड़ी पर हमारे ब्रह्मचारी (प्रभु जी) का आसन (पत्थर की शिला) है। यदि आप उसे यहाँ ला सकें तो ये ब्रह्मचारी जी भी यहीं मेरे साथ बैठकर भजन कर लिया करेंगे।

कृपालानन्द जी मुस्कराते हुए बोले-तुम्हारे ब्रह्मचारी जी हमें बहुत प्यारे लगते हैं हम इनका काम अवश्य करेंगे। इतना कहकर वे अपनी अंग्रेज शिष्या से बोले-देवी ! हीरागिरि जिस शिला को यहाँ मंगाना चाहते हैं तुम उसे सामने के पहाड़ पर जाकर वहाँ से उठा लाओ। आज्ञा पाते ही वह योगिनी उठी। अपने गुरुदेव कृपालानन्द जी को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ती हुई पहाड़ी पर चढ़ गयी और उसी स्थान पर रुकी जहाँ वह पत्थर की विशाल शिला पड़ी हुई थी। उसने मन ही मन अपने गुरुदेव को प्रणाम किया और उनका स्मरण करती हुई उस शिला पर पद्मासन लगाकर बैठ गयी। उसके बैठने की देरी थी कि शिला उठकर आकाश में चली गई और उस योगिनी के सहित आकाश मार्ग से चलती हुई हीरागिरि के स्थान पर पहुँच गई। शिला के धरती पर उतर जाने पर वह देवी भी शिला पर से उतर गई और अपने गुरुदेव को प्रणाम करके अपने आसन पर विराजमान हो गयी।

कृपालानन्द जी हीरागिरि को सम्बोधित करते हुए बोले-हीरागिरि ! यह रही तुम्हारी शिला। अब तुम इस शिला को संभालो। और हम चलते हैं। इतना कहकर वे वहाँ से चले गये।

इस घटना के पश्चात् हीरागिरि के स्वभाव में कुछ परिवर्तन आ गया और उन्होंने कृपालानन्द जी से ईर्ष्याभाव त्याग दिया। श्री प्रभु जी तो प्रथम भेंट में ही अपनी अन्तर्दृष्टि से योगीराज कृपालानन्द जी की योग में पराकाष्ठा तथा उनके महान योगैश्वर्य को जान गये थे। अतः वे उनके प्रति अपने हृदय में बड़ा आदर भाव रखते थे। उनकी योगलीला को देखकर वे बड़े आह्लादित होते थे। साथ ही हीरागिरि की बच्चों की सी चपलता एवं कुटिलता पूर्ण चेष्टाओं को देखकर वे मन ही मन हंसा करते थे। उधर कृपालानन्द जी भी प्रभु जी से बड़ा स्नेह रखते थे। वे प्रायः मौन रहते थे, किसी से अधिक बातचीत नहीं करते थे, किन्तु एक बार प्रभु जी एकान्त में उनसे मिलने गये तो उन्होंने उन्हें बड़े प्यार से अपने पास बैठाया और उनके साथ घंटों तक योग चर्चा करते रहे।

प्रभु जी को वहाँ रहते हुए कई दिन हो गये थे। अब उन्होंने अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। अगले दिन प्रातःकाल वे वहाँ से चल पड़े और लक्ष्मण झूला, ऋषिकेश होते हुए तीसरे दिन हरिद्वार पहुँचे। वहाँ आपकी भेंट जयराम नामक व्यक्ति से हुई जो कि आपके पिता जी का कृपापात्र शिष्य था। जयराम ने प्रभु जी को प्रणाम किया और उसके पास जो कुछ धन था उसे आपको भेंट करके बोला-प्रभो आप कृपा करके मुझे अपने चरणों में आश्रय दीजिये। उसके विनम्र भक्ति भाव को देखकर प्रभु जी ने उसे अपने साथ रख लिया। उसे साथ लेकर आप काठगोदाम (नैनीताल) पहुँचे और वहाँ एक धर्मशाला में ठहर गये। वहाँ के राजवंश तथा अपने कुछ अन्य संस्कारी बच्चों का कल्याण करने के उद्देश्य से आपने वहाँ एक लीला की। उन्होंने जयराम

ब्रह्मचारी को कहा-देखो जयराम! हमारे पास न तो रुपये हैं और न किसी प्रकार की भोजन सामग्री है। इसलिये भोजन व्यवस्था तथा यात्रा का खर्च जुटाने के लिये हमें कुछ उपाय करना चाहिये। मेरे पास कुल तीन पैसे बचे हुए हैं। तुम इसके कागज और स्याही ले आओ। कागज आ जाने पर प्रभु जी ने उन कागजों पर यह विज्ञापन लिखा-"जिसने अपनी जन्मपत्री दिखानी हो या किसी असाध्य रोग का इलाज कराना हो वह फलानी धर्मशाला में आकर हमसे मिल सकता है।" इलाज करने या जन्मपत्री देखने की कोई फीस नहीं ली जायेगी।"

इस विज्ञापन को नगर के प्रमुख स्थानों पर चिपका दिया गया। जिससे अगले दिन से वहाँ भीड़ इकट्ठी होनी आरम्भ हो गई। जो भी वहाँ आता उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाती थी। यदि कोई जन्मपत्री लेकर आता तो प्रभु जी उसे भूत-भविष्य की बातें सत्य-सत्य बता देते और यदि कोई रोगी वहाँ आता तो आप उसे एक साधारण सी पुड़िया खिलाकर उसका सारा रोग मिटा देते थे। इससे सभी लोगों को यह विश्वास हो गया कि ये कोई सिद्ध महात्मा हैं। बात फैलते-फैलते राजा तक भी पहुँच गई। अगले दिन वह भी राजमाता को साथ लेकर प्रभु चरणों में उपस्थित हो गया।

आपके दर्शन तथा वचनामृत का पान करके राजा को अपार शान्ति प्राप्त हुई। उसे यह पूर्ण विश्वास हो गया कि ये कोई छिपे हुए योगिराज हैं जो कि हम लोगों को सनाथ करने के लिये यहाँ पधारे हुए हैं। राजा और राजमाता कई घंटों तक प्रभु चरणारविन्दों में बैठे रहे और आपसे बार-बार उनके साथ राजमहल में चलने का आग्रह करते रहे। उनके पवित्र मनोभावों को जानकर एवं विनम्र व्यवहार को देख कर प्रभु जी ने राजमहल में जाना स्वीकार कर लिया। आप अगले दिन राजा के साथ उसके महल में चले गये और लगभग १५ दिन वहाँ रहे। वहाँ से प्रस्थान से पूर्व आपने राजा और राजमाता को योग मार्ग में दीक्षित किया और तीव्र शक्तिपात द्वारा उन्हें समाधि का अनिर्वचनीय सुख अनुभव करा दिया। पूरा राज परिवार प्रभु जी से कुछ दिन वहीं रुकने के लिये बार-बार प्रार्थना करता रहा। किन्तु आपने और भी बहुतों का कल्याण करना था। अतः आप वहाँ अधिक समय नहीं रुके और अल्मोड़ा के लिये प्रस्थान कर गये। पूरे राज परिवार ने बड़े समारोह के साथ आपको भाव भीनी विदाई दी।

क्रमशः

※※※

सच्चा शिष्य गुरु के किसी बाहरी काम पर लक्ष्य नहीं करता। वह तो केवल गुरु की आज्ञा को ही सिर नवाकर पालन करता है।

किमस्ति योगः

(षड् विंशतिः श्रृंखला)

रचनाकार : द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ।

प्रस्तुत लेख २६वीं श्रृंखला है 'किमस्ति योगः' की। विभूति योग के तृतीय पाद से क्रमशः चले आ रहे पाँच सूत्रों को लेकर पूर्ववत् प्रारम्भ किया जा रहा है। मंगलाचरण श्लोकों से।

(१)

चरणौ श्री गुरोर्नत्वा, ध्यात्वा सौम्यां तदा कृतिम्।
पांसवस्तच्चरणयोः, सुमेधा मेधताञ्च मे।।

(२)

तनोतु वाग्विलासं मे, योगनिष्ठां दधातु मे।
छिनत्तु संशयान् सर्वान्, श्रद्धां पुष्णातु मे गुरुः।।

(३)

लिखामि यदहं सर्वं, योगसूत्रेषु मन्दधीः।
प्रभया भातु दीप्तंतत्, सद्गुरोः श्रीः समाश्रये।।

(४)

निम्नांकितानि सूत्राणि, समालम्ब्य समारभे।
श्लोकान् विरचय्य तथा, कृत्वा भाषां यथाक्रमम्।।

- श्री गुरुचरणों में नमन कर, उनकी सौम्याकृति का स्मरण कर, उनकी चरण रज मेरी सुबुद्धि की अभिवृद्धि करे।
- वे मेरे वाग्विलास का विस्तार करें, योग के प्रति मेरी निष्ठा करें, सकल संशयों का छेदन करें तथा मेरे गुरुदेव श्रद्धा का पोषण मुझ में करें।
- योगसूत्रों पर यह सब मैं मन्दमति लिख रहा हूँ, वह प्रभा से प्रदीप्त होकर उद्भासित हो। मैं श्री सद्गुरुदेव की श्री का आश्रय लेता हूँ।
- निम्नांकित सूत्रों का आधार ले, श्लोकबद्ध कर तत्पश्चात् यथाक्रम भाषानुवाद के साथ आरम्भ कर रहा हूँ।
- सूत्रं तदर्थ सहितञ्च – **तस्य भूमिषु विनियोगः।**

(५)

क्रमात् तस्य संयमस्य, चेतसो भूमिकासु वै।
विनियोगः प्रकर्तव्यः, तदेवोक्तं महर्षिणा।।

(६)

योगी युञ्जीत प्रथमं, भूमिषु स्थूलवृत्तिषु।
संयमादधिकर्तव्यः, पतञ्जलेर्यतमिदम्।।

(७)

जायते विजितो यावत्, संयमं स्थूल वृत्तिषु।
कर्तव्यः संयमः पश्चात्, सूक्ष्म वृत्तिषु भूमिषु।।

(८)

संयम एव चित्तस्य, वशीकारस्य कारणम्।
अंगानि संयमस्यैव, धृतिर्ध्यानं समाधयः।।

- उस संयम का क्रम से चित्त भूमियों में विनियोग करना चाहिये।
- योगी को प्रथम चित्त को स्थूलवाली भूमि में संयम करना चाहिये।
- जब उसको जीत लिया जाय तो सूक्ष्म वृति वाली चित्त की भूमि में संयम करना चाहिये।
- चित्त के वशीकार का कारण संयम ही है। संयम के अंग हैं धारणा, ध्यान और समाधि।
- सूत्रं तदर्थसहितञ्च – **त्रयमन्तरंग पूर्वेभ्यः।**

(९)

त्रीणि सन्त्यन्तरंगानि, योगस्य साधनानि वै।
पंचपूर्वापेक्षया तु, त्रीणि श्रेष्ठानि तानि हि।।

- पहिलों की अपेक्षा तीनों (धारणा, ध्यान, समाधि) अन्तरंग हैं।
- सूत्रं तदर्थ सहितञ्च – **तदपि बहिरंग निर्बीजस्य।**

(१०)

धृतिर्ध्यानं समाधिश्च, अन्तरंगानि यद्यपि।
तथापि बहिरंगानि, निर्बीजाय समाहिते।।

- वह (धारणा, ध्यान, समाधि) भी निर्बीज समाधि के बहिरंग हैं।

– सूत्रं तदर्थसहितञ्च – व्युत्थान निरोध संस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ
निरोधक्षण चित्तान्वयो निरोध परिणामः।

(११)

व्युत्थानस्य ह्यवस्थायां, संस्काराभिभवः खलु।
निरोधे तस्य प्राकट्यं, तन्निरोध परिष्कृतिः।।

(१२)

निरोध समये यावत्, द्वयोः संस्कारयोर्यश्च।
अनुगतिः स्याच्चेतसि, परिणामो निरोधस्य।।

(१३)

निरोधः सर्ववृत्तीनां, विरामो- परवैराग्यः।
द्रव्येषु च परिणामः, त्रिगुणात्त्रिप्रकारकः।।

(१४)

धर्म लक्षणा वस्थास्तु, परिणामास्त्रयोविधाः।
यस्मिन् कस्मिन्नपि द्रव्ये, परिणामेन घट्यते।।

(१५)

द्रव्यं च धर्मी गदितं, तद् धर्मः परिणामकः।
मृत्तिका तु यथा धर्मी, घटादिर्धर्म उच्यते।।

(१६)

धर्म्यां वै मृत्तिकायान्तु, घटादि निर्मितावपि।
नेतरथा परीवर्तं, दृश्यते कुत्रचित्तथा।

(१७)

घटादि पात्र निर्माणात्, धर्मस्याभिभवो मतः।
द्वितीय धर्म-प्राकट्यं, धर्म त्यागाय मन्यते।।

(१८)

लक्षण- परिणामस्य, इयमस्ति विवेचना।
यथा घटादि प्राकट्यं, हेतुस्तत्रास्ति मृत्तिका।।

(१९)

जीर्णे-शीर्णे घटे जाते, शेषन्तु मृत्तिकां गते।
मृत्तिकायास्त्रिकालेऽपि, घटादेर्वर्तमानत्वात्।।

(२०)

कालभेदात् मृत्तिकायां, त्रीण्येव लक्षणानि च।
भविष्य लक्षणं पूर्वं, वर्तमानं द्वितीयकम्।
तृतीयं लक्षणं भूतं, एवमेषा त्रिलक्षणा।।

(२१)

अवस्था परिणामे तु, भञ्जनं शीर्यमाणं च।
तत्कालस्य परीणामः, अवस्था नाम दीयते।।

(२२)

त्रिगुणानां प्रभावेण, चित्तवृत्तीः प्रभाविताः।
दृश्यन्तेऽपि हि सर्वत्र, निरोधे सति वृत्तिषु।।

(२३)

यथा व्युत्थान संस्काराः जाग्रन्ति वृत्ति सारुप्ये।
तथा चैव निरोधोऽपि, चेतसो वृत्तिलक्षणः।।

–व्युत्थान अवस्था में संस्कारों का दब जाना तथा निरोध अवस्था में संस्कार का प्रकट हो जाना यह जो निरोध समय में चित्त का दोनों संस्कारों में अनुगत होना है, वह निरोध परिणाम है।

निरोध का अर्थ सब वृत्तियों का रुक जाना अर्थात् पर-वैराग्य संस्कार है। परिणाम तीनों गुणों से उत्पन्न सब द्रव्य में तीन प्रकार के होते हैं। धर्म-परिणाम, लक्षण-परिणाम तथा अवस्था-परिणाम।

जिस द्रव्य में यह परिणाम होते है उसको धर्मी तथा परिणाम को धर्म कहते हैं। जैसे मिट्टी धर्मी तथा घटादि पात्र धर्म है। धर्मी मिट्टी में कोई परिवर्तन नहीं होता लेकिन धर्म घटादि बदलते रहते हैं। यही एक धर्म का दबना तथा दूसरे धर्म का प्रकट होना है जो मिट्टी का धर्म-परित्याग कहलाता है।

लक्षण परिणाम उसको कहते है जैसे घटोत्पत्ति के पश्चात् भी वह मिट्टी में ही

अन्ततः मिल जायेगा। इस प्रकार मिट्टी में तीनों कालों में घटादि वर्तमान रहने से कालभेद से धर्मी मिट्टी में तीन लक्षण परिणाम होते हैं।

(१) भविष्य लक्षण परिणाम (२) वर्तमान लक्षण परिणाम (३) भूत लक्षण परिणाम।

अवस्था परिणाम में–घटादि के जीर्ण होने एवं किसी समय टूटने-फूटने का समय अवस्था परिणामी है।

चित्त त्रिगुणात्मक प्रभावेण मुक्त नही है। उसमें हर समय वृत्ति रूप परिणाम होता है। इसलिये वृत्तियों के निरोध होने पर भी इनका (व्युत्थान के संस्कारों का) मौजूद रहना स्वाभाविक है। इसी प्रकार निरोध (पर-वैराग्य) के संस्कार भी चित्त के धर्म हैं। इन दोनों संस्कार रूपी धर्मों में से एक धर्म का दबना और दूसरे का प्रकट होना धर्मी चित्त का धर्म परिणाम है–अर्थात् चित्त का निरोध संस्कारों से सम्बन्धित हो जाना, व्युत्थान धर्म से निरोध धर्म में परिणत होना निरोध परिणाम है।

– सूत्रं तदर्थ सहितञ्च – तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात्।

(२४)

स्थितिः काऽस्ति निरोधस्य, तदेवाचक्षते ननु।
संस्कारस्तु निरोधस्य, प्रशान्तवाहिता स्थितिः।

(२५)

यथा काष्ठे समाप्ते हि, अग्निरपि च शाम्यति।
चेतोऽथवा वृतयस्ताः, तद्वत् वै परिकल्प्यताम्।।

–निरोध संस्कार चित्त की प्रशान्त प्रवाह वाली स्थिति होती है। जैसे काष्ठ समाप्त होने पर अग्नि भी शान्त हो जाती है। वैसे ही चित्त की वृत्तियों के अभाव में निरोध संस्कारोदय पर शान्तचित्तता आती ही है।

(२६)

प्रसादात् हि गुरोरेतद्, लेखनं परिभावितम्।
अतस्तत्पाद पद्मेषु, समर्प्य विरमाम्यहम्।।

–श्री सद्गुरुदेव की कृपा प्रसाद रूप यह लिखा गया है अतः उनके ही चरण कमल में समर्पित कर लेख को विराम दे रहा हूँ।

***

योग के लिए परमावश्यक बातें

डा० स्वामी केशवाचार्य

- **त्रियोग :** कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग।
- **योगचतुष्टय :** हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग और राजयोग।
- **द्विविधनिष्ठा :** सांख्ययोग और कर्मयोग।
- **द्विविधप्रकृति :** परा और अपरा।
- **त्रिविध पुरुष :** क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम (जगत, जीव और भगवान)
- **वेदान्त के चार महावाक्य :** अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म।
- **सप्तज्ञान भूमिका :** शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थभावनी और तुर्यगा।
- **साधन चतुष्टय :** नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा समाधान), मुमुक्षुत्व।
- **त्रिविध नरक द्वार :** काम, क्रोध और लोभ।
- **त्रिविध ज्ञान द्वार :** श्रद्धा, तत्परता और इन्द्रिय संयम।
- **भक्ति के चार महावाक्य :** कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्, मत: परतरं नान्यत्, ब्राह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्, मामेकं शरणं व्रज।
- **द्विविधा भक्ति :** अपरा या गौणी, परा या रागानुगा।
- **नवधा भक्ति :** श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन।
- **पञ्चभाव :** शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर।
- **अष्ट सात्विक भाव :** स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।
- **प्रेम की तीन अवस्थाएँ :** पूर्वराग, मिलन, वियोग।
- **त्रिविध विरह :** भूत, वर्तमान और भावी।
- **विरह की दस दशाएँ :** चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह और मृत्यु।
- **चतुर्विध भाव :** भावोदय, भावसन्धि, भावशावल्य और भावशान्ति।
- **द्विविध महाभाव :** रुढ़ और अधिरुढ़।
- **द्विविध अधिरुढ़ महाभाव :** मोदन और मादन (या मोहन)।
- **आसन :** चौरासी या एक सौ आठ (प्रधान दो-पद्मासन और स्वस्तिकासन)।
- **मुद्रा और बन्ध :** अनेक है। परन्तु पच्चीस मुख्य है। उनके नाम है- महामुद्रा, नभोमुद्रा,

उड्डीयान बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूल बन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रौली, शक्ति चालनी, तडागी, माण्डवी, शाम्भवी, अश्विनी, पाशिवी, काकी, मातंगी, भजंगिनी और पाँच धारणाएँ (पार्थिव, आम्भासी, वैश्वानरी, वायवी और आकाशी)।

- **षट्कर्म :** धौति, गजकरणी, वस्ति, नौली, नेति और कपाल भाति। कोई-कोई त्राटक समेत सात मानते हैं।
- **प्राणायाम :** पूरक, कुम्भक और रेचक।
- **चतुर्विध पातंजलोक्त प्राणायाम :** आभ्यन्तर, बाह्य और दो प्रकार के केवल प्राणायाम्।
- **अष्टविध प्राणायाम :** सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और प्लाव्नी। कुछ लोग अनुलोम-विलोम को जोड़कर नौ प्रकार मानते हैं।
- **दैनिक श्वास :** इक्कीस हजार छः सौ।
- **तीन प्रधान नाड़ियाँ :** इडा, पिंगला और सुषुम्ना।
- **दस वायु :** प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय।
- **योग के षट्चक्र :** मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा।
- **योग के सप्त चक्र :** उपर्युक्त छः और सातवाँ सहस्रार।
- **योग के नौ चक्र :** उपर्युक्त सात और आठवाँ तालु में ललना चक्र और नवाँ ब्रह्मरन्ध्र में गुरु चक्र।
- **षोडश आधार :** दाहिने पैर का अंगूठा, गुल्फ, गुदा, लिंग, नाभि, ह्रदय, कण्ठकूप, तालु मूल, जिह्वा मूल, दन्तमूल, नासिकाग्र, भ्रूमध्य, नेत्रमण्डल, ललाट, मस्तक और सहस्रार।
- **तीन ग्रन्थि :** ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि।
- **त्रिमार्ग :** पिपीलिकामार्ग, दादुर मार्ग, विहंगम्मार्ग।
- **त्रिशक्ति :** ऊर्ध्वशक्ति (कण्ठ में), अधः शक्ति (गुदा में) और मध्य शक्ति (नाभि में)।
- **पंच भूत :** पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।
- **पंचाकाश :** आकाश, महाकाश, पराकाश, तत्वाकाश और सूर्याकाश।
- **वर्ण :** पचास ('अ' से 'ह' तक)।
- **त्रिविध मन्त्र :** पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और क्लीब।
- **चतुर्विध वाणी :** परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी।
- **आठ अंग :** यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।
- **यम :** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।
- **नियम :** शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान।

- **संयम :** धारणा, ध्यान और समाधि।
- **क्रियायोग :** तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।
- **द्विविध ध्यान :** भेद भाव से और अभेद भाव से।
- **द्विविध समाधि :** सम्प्रज्ञात या सबीज और असम्प्रज्ञात या निर्बीज।
- **सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद :** वितर्कानुगम, विचारानुगम, आनन्दानुगम और अस्मितानुगम।
- **असम्प्रज्ञात के दो भेद :** भव प्रत्यय, उपाय प्रत्यय।
- **पञ्चवृत्ति :** मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध।
- **पञ्चक्लेश :** अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।
- **सप्त साधन :** शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैय, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता।
- **योग के विघ्न :** व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, विषय, तृष्णा, भ्रान्ति, फल मे संदेह, चित्त की अस्थिरता, दु:ख, मन की खराबी, देह की चंचलता, अनियमित श्वास प्रश्वास, अनियमित और उत्तेजक आहार, अनियमित निद्रा, ब्रह्मचर्य का नाश, नकली गुरु का शिष्यत्व, सच्चे गुरु का अपमान, भगवान मे अविश्वास, सिद्धियों की चाह, अल्प सिद्धि मे ही पूर्ण सफलता मानना, विषयानन्द, पूजा करवाना, गुरु बनना, दम्भ करना।
- **अष्ट महासिद्धि :** अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, यत्र का भाव साचित्व। कुछ लोग इनमें गरिमा जोड़कर इनकी संख्या नौ कर देते हैं।
- **चतुर्विध साधक :** मृदु, मध्य, अधिमात्र और अधिमात्र तम।
- **चार अवस्थाएँ :** जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया।

योग योगेश्वर भगवान श्री महाप्रभु जी एवं प्रात: स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित योगिराज श्री सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्र मोहन जी महाराज जी के कृपा प्रसाद से योग के पूर्ण मार्ग मे जो आवश्यक है, वही यहाँ उल्लेख किया गया है। अत: योग मे प्रवृत होते हुए श्री सद्गुरुदेव भगवान का आशीर्वाद प्राप्त करते हुए जीवन धन्य बना लेना चाहिये।

***

ईश्वर साकार-निराकार और क्या-क्या है, यह हम लोग नहीं जानते। तुम्हें जो अच्छा लगे उसी में विश्वास कर उसे पुकारो, तुम उसी के द्वारा उसे पाओगे। मिसरी की डली चाहे जिस ओर से, चाहे जिस ढंग से तोड़कर खाओ मीठी लगेगी ही।

श्री गुरु वन्दना

जितेन्द्र कुमार, बुलन्दशहर

गुरु वदन चारहुँ वेद सम अरु, गुरु गिरा गिरि सरस्वति।
गुरु वाक्य उज्जवल भाषकर, नित उदित प्रकाशित मति।।
गुरु चक्षु है आगम निगम, सुन्दर सुखद नित सत्यलख।
पर ब्रह्म हृदय शिष्य अनुरत, दलसम कर कमल नख।।
गुरु-कंठ शंकर, वक्ष भूमा, चित्त सित आकाश वत।
गुरु उदर सागर, नाभि विष्णु, इन्द्र ब्रह्मा अनुहरत।।
गुरु श्वांस वायु, योग अग्नि, नीर निग्रह वर विरत।
ज्ञान से खर ध्यान पर्वत, भव जलध बोहित फिरत।।
"गुरुचरण रज" भवरोग औषध, प्रेम लक्षित हर समय।
अखिलेश्व के सम जानकर, निष्कपट श्री गुरुवे नमः।।

।।आत्म समर्पण।।

चित चिदानन्द छन्द निग्रह ज्ञान के, भण्डार हो तुम।
शब्द में सूक्ष्म विराजत जगत मे साकार हो तुम।।
हे गुरु भव मध्य रहकर फिर भी इससे पार हो तुम।
जा मिलि आनन्द निधि मे सरित शीतल धार हो तुम।।
ऊर्जा, दिनकर, तुमही हो पर्वतो मे भार हो तुम।
अन्न अचला पर तुम ही हो पवन हो करतार हो तुम।।
कीर्ति यश पात्र सम्भव सलौने संसार हो तुम।
तुम अजीरण और अजय हो लोक में विख्यात हो तुम।।
तम विनाशक हो तुमही वर उज्जवल प्रभात हो तुम।
शारदा राकेश गौरा शुभ्र हो अवदात हो तुम।।
हो कहीं कुछ भी "जितेन्द्र" के प्रभु-पितृ-मात हो तुम।।

***

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः

ब्र. विजय प्रकाश पालीवाल (एत्मादपुर) आगरा

हमारा मन हृद्गत भावों का वास्तविक दर्पण है। गीता के विभूतियोग वर्णन में स्वयं भगवान कहते हैं–

'इन्द्रियाणां मनश्चास्मि'।। (गीता १०/२२)

इन्द्रियों में मैं मन हूँ। मन कुछ विनिष्ट सामयिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है, क्योंकि वह परिवर्तनशील मस्तिष्कधारी मानव का यथातथ्य व्यवहार प्रतिबिम्ब है। शुभ और अशुभ परिणाम मुक्ति तथा बन्धन के कारण है, इसीलिए कहा गया है–

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।' (शाट्यायनीयोपनिषद १)

अपना मन ही समस्त बन्धनों एवं मोक्ष का कारण है, अतः इस मन को भगवान के विग्रह-दर्शन में ही लगाकर मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये। इन्द्रियों की गुलामी मनुष्य की सबसे बड़ी गुलामी है। यह जो हमारी पाँच इन्द्रियाँ है–आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा तथा इनके पाँच ही विषय है–रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श। जगत में यह केवल पाँच ही विषय हैं और हम सब इन्हीं पाँचों विषयों में फंसे हुए है। मनुष्य अपने को स्वतन्त्र मानता है, परन्तु वह होता है इन्द्रियों का गुलाम। मन का गुलाम।

श्री शंकराचार्य जी का एक छोटा-सा ग्रन्थ है- **'प्रश्नोत्तरी'**। इसमें प्रश्न है–**'जितं जगत्केन'** (११) अर्थात् जगत को किसने जीता ? उत्तर है **'मनो हियेत'** अर्थात् जिसमे मन को जीता, जिसने मन पर विजय प्राप्त करली। मनुष्य जब इन्द्रियों के परवश हो जाता है तब उसकी क्या स्थिति होती है ? श्री तुलसी दास जी ने कहा–

अबलौ नसानी, अब न नसै हौं।
राम कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसै हौं।।

※※※

परवस जाति हँस्यो इन इन्द्रिन, निष बस है न हँसैहौ।।

(विनय-पत्रिका १०५)

इसलिये इन्द्रियों के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। भगवान् ने कहा है–

'कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः' (गीता २/५८)

अर्थात् जिस प्रकार कछुआ थोड़ी सी ध्वनि होने पर तत्काल अपने अंगों को समेट लेता है। इसी प्रकार हमें इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से रोक रखना चाहिये। इनके विषय में कहा गया है–

'पराञ्चि खानि' (कठोपनिषद्) २/१/१

अर्थात् इन्द्रियों का स्वभाव ही है बहिर्गमन करना। यद्यपि बाहर की ओर जाने वाली इन्द्रियों को रोकना बड़ा ही कठिन है। परन्तु यदि मन बुद्धि के वश में है और बुद्धि आत्मा के वश में है तो इन्द्रियों को सरलता से रोका जा सकता है।

इन्द्रियों की तुलना घोड़ों से की जाती है। और विषयों को उन घोड़ों के विचरने का मार्ग बतलाते हैं–

'इन्द्रियाणि ध्यानाहुर्विषया‍ँस्तेषु गोचरान्'। (कठोपनिषद १/३/४)

तथा जीवात्मा रथ का स्वामी, शरीर रथ, बुद्धि सारथी और मन लगाम है–

आत्मानँ रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिंतु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। (कठोपनिषद १/३/३)

मन की गति बड़ी तीव्र है। भगवान ने गीता में कहा है–

चंचल हिमनः कृष्ण प्रमापि वलनद्दृढम।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। (गीता ३६/३४)

हे कृष्ण! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान है, इसलिए उसको वश में करना मैं वायु की भाँति अति दुष्कर मानता हूँ।

मन को वश में करने का उपाय बताते हुए भगवान ने गीता में कहा है–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (गीता ३६/३५)

निः सन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिए प्रयत्न करने से और वैराग्य से वश में होता है।

मन को वश में करके बार-बार भगवान के चिंतन में लगाना चाहिए। जिसके लिए हमें यह मानव-शरीर प्राप्त हुआ है। इसी में हमारा कल्याण है।

***

गुरु और शिष्य का सम्बन्ध पूर्वज और वंशज के सम्बन्ध जैसा ही है। श्रद्धा, नम्रता, शरणागति और आदरभाव से शिष्य गुरु का मन मोह ले तो भी उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है।

"उपनिषदीय तात्विक कथायें"

डा. विजय सिंह, गोरखपुर

आनन्दकन्द योगयोगेश्वर श्री सद्गुरु भगवान हम सभी कलिमल लिप्त जीवों को अपनी कृपा शक्ति से सिंचित कर हमारे अभ्यान्तर विकास हेतु सदैव तत्पर है। योग सिद्धान्त एवं उसके व्यवहारिक बोध से दृढ़ करने हेतु समय-समय पर उपनिषदों, महाभारत, श्री मद्‌भागवत तथा नाना पुराण एवं स्वानुभूत कथानकों द्वारा हम सभी को प्रबोधन देते रहे हैं।

आत्म सत्ता की ओर बढ़ते साधक को साधन स्थैर्य हेतु वैराग्य की आवश्यकता अपरिहार्य है। विरागी चित्त वाला साधक घर में हो या वन में यथार्थतः ब्रह्मबोध ऐसे ही लोग कर सकते हैं। श्री सद्गुरु देव जी याज्ञवल्क की कथा सुनाते रहे हैं। कथा अत्यन्त बोधात्मक है। यही खरी कसौटी है। ऋषिप्रवर याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ मैत्रेयी और कात्यायनी थी। ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा ब्रह्मज्ञ याज्ञवल्क्य गृहस्थ थे। संन्यास लेने की इच्छा से प्रेरित हो उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों को अपने पास बुलाकर कहा-मैं अब संन्यास लेना चाहता हूँ इस हेतु अपने द्रव्य को तुम दोनों में बाँट देना चाहता हूँ। यह सुनकर बड़ी पत्नी मैत्रेयी ने जो विवेकशीला तथा वैराग्य-सम्पन्ना थी विनम्रता के साथ निवेदन किया-क्या ? इस भूमण्डल की सारी संपत्ति को पाकर मैं निःसीम आनन्द को प्राप्त हो सकूँगी ? ऋषिवर ने कहा-कभी नहीं। क्षणिक आयु भोग तक ये आनन्द भोग के साधन बन सकते है। धन-सम्पत्ति से यही प्रयोजन सिद्ध होते हैं। तब मैत्रेयी ने आग्रह पूर्वक पूछा-प्रभो! मुझे भी उस सत्य वस्तु को देखने और इस मायाजाल को तोड़ने की शक्ति प्रदान करने की कृपा करें। इसके सिवाय मैं भौतिक धन की अभिलाषी नहीं हूँ। भगवान याज्ञवल्क्य मैत्रेयी के विवेक एवं वैराग्य को देखकर प्रसन्न हुये और उसे आत्मविद्या का उपदेश दिया। यह कथा निश्चय ही निबिड़ान्धकार को दूर करने वाली है।

ऋषिवर ने कहा-हे मैत्रेयी ! पत्नी पति के लाभ के लिये उससे प्रेम नहीं करती अपितु अपने लाभ के लिये करती है। इसी तरह पति भी पत्नी के लाभ के लिये उससे प्रेम नहीं करता अपितु अपने सुख के हेतु से करता है। इस प्रकार संसार में हर व्यक्ति दूसरे सम्बन्धित व्यक्ति से अथवा पदार्थ से जो प्रेम करता है वह स्वयं अपने प्रयोजन के लिये है; न कि उनके प्रयोजनार्थ। सब पदार्थों ध न, पुत्र, पत्नी का भी त्याग करके मनुष्य अपनी रक्षा करना चाहता है। अतः यह हर किसी के लिये सत्य है कि सबसे बढ़कर प्रेम अपने में होता है। अतः आत्मा ही परम प्रेमाधार है। इस हेतु आत्मा ही परमानन्द का भी आधार है।

ऋषिवर याज्ञवल्क्य फिर बोले-मैत्रेयी ! बाहरी विषय दुःख के कारण है। उसमें सुख की भ्राँति है उसे दृढ़ वैराग्य की तपन में विलुप्त होता दिखाई पड़ेगा। तब आनन्दस्वरूप स्वस्वरूप आत्मतत्व दृष्टि गोचर होगा।

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"

इस हेतु श्रवण, मनन, निदिध्यासन् के सतत् अभ्यास से आत्मा का दर्शन व्यक्ति को करना चाहिए।

आत्मा क्या है ? योगिवर याज्ञवल्क्य बताते है-

यह अद्वितीय, सर्वव्यापक सब शरीर धारियों में जीवन रूप वर्तमान एक ही आत्मा है। यही जगत् का भी आधार भूत है। यही समष्टि रूप ब्रह्म है। जिसे धारणा, ध्यान एवं निर्विकल्प समाधि द्वारा आत्म तत्व को प्रत्यक्ष करके साधक सर्वदा के लिए तृप्त हो जाता है।

अत: मानव जीवन में अपनी आत्मा को जानने से बढ़कर और कोई पुरुषार्थ नही है और न उसमें कोई लाभ है। इसके सिवाय न कोई सुख नाम की चीज है और न कोई इतर कर्तव्य है। आत्मबोध ही मनुष्य का परम कर्तव्य है। इसे पाने पर ही परमानन्द है। यही परम विद्या भी है। समर्थ सद्गुरुदेव अपने सभी शिष्यों को इसी तत्वानुबोध हेतु अहैतुक शक्तिपात रूपी कृपादान करते रहे है। जिससे हम सभी आत्मा-दर्शन से चिरन्तन अमरता को प्राप्त हो जाये। इस कथा का सार तत्व वैराग्य है। आत्म-साक्षात्कार रुपी साधन योग की पूर्णता के लिये अभ्यास और वैराग्य ही प्रमुख है। क्योंकि बिना इन्द्रियों के विषयों में वितृष्णा हुये आत्मानन्द की बात आकाश कुसुम के मानिन्द है। भर्तृहरि जी का कथन-सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवाऽभयम्। वैराग्य से ही अभयत्व की उपलब्धि होती है। श्री गुरुदेव जी वैराग्य की चार श्रेणियों के बारे में बताते रहे है-

१. यतमान संज्ञा वैराग्य
२. व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य
३. एकेन्द्रिय संज्ञा वैराग्य
४. वशीकार संज्ञा वैराग्य

इन्द्रियों के विषय अपने-अपने रागों में मनुष्य के मन को बलात आकृष्ट करते है। ऐसे भोगों की उपस्थिति मे योगी उनसे प्रभावित नही होने की चेष्टा करता है। यथा अपने चित्त को नियंत्रित करता है। इसका नाम यतमान वैराग्य है। इस प्रकार ऐसा अभ्यास करते हुये जब योगी देखता है कि मैंने अमूक विषयों पर जयता प्राप्त कर ली है और अभी इन विषयों पर अधिकार प्राप्त करना है इसे व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य कहते है।

अभ्यास बल से अथवा अन्तरानुभूति के फलस्वरूप जब साधक को अब राग-द्वेष उसके इन्द्रियों को बाह्य विषयों में प्रवृत्त करने में तो असमर्थ हो जाते है परन्तु मन में सूक्ष्म जीव रूप अभी विद्यमान है। खतरा अभी टला नही है। क्योंकि जब दिव्य योगात्मक विषय उसे प्रत्यक्ष होते है तो उसका मन चंचल हो सकता है। ऐसे वैराग्य को एकन्द्रिय संज्ञा वैराग्य कहा गया है।

साधना अभ्यास एवं वैराग्य बोध की उत्कृष्टता जब ऐसी हो जाये कि दिव्यादिव्य भोग उपस्थित होने पर भी मन में स्वाभाविक उपेक्षा वृत्ति बनी रहे यह वैराग्य की उपरोक्त मनोभूमिकाओं से भी उत्कृष्ट स्थिति है। पहली तीन अवस्थाओं का वैराग्य चित्र निरोध का कारण नही है। यह चौथा चित्त निरोध का कारण होता है। अत: इसे वशीकार संज्ञक वैराग्य बताया गया है। अत: पहले के कहे गये तीनों वैराग्य की भूमियाँ अपर वैराग्य है। वशीकार संज्ञा वैराग्य पर-वैराग्य है। इससे रस पूर्ण रूपेण हट जाते है। तब चित्त वृत्तियाँ पूर्णतया निरोध होकर शांत होती है और साधक साधना का समाधान प्राप्त करता है- स्वरूप द्रव्य बनकर। निरोध स्थिति ही योगी की स्वरूप स्थिति है-

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।।

***

योग और उसके फल

स्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती

योग क्या है ?

'योग' शब्द संस्कृत के 'युज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जोड़ना। योग का आध्यात्मिक अर्थ है वह साधन-सरणि जिसके द्वारा योगी को जीवात्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव होता है–जीवात्मा का परमात्मा के साथ ज्ञान पूर्वक संयोग होता है। इस गुह्य ज्ञान को सिखाने वाला शास्त्र **योगशास्त्र** कहलाता है।

योग वह आध्यात्मिक विद्या है जो जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग कराने की प्रक्रिया बतलाती है। योग वह परमार्थ विद्या है जो जीव को इन्द्रियगोचर बाह्य प्रपंच के जंजाल से मुक्त कर अखण्ड आनन्द, परम शान्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त जीवन आदि स्वाभाविक गुणों से युक्त परमात्मा के साथ उसका संयोग करा देती है।

योग का व्यापक अर्थ करने से उसके अन्दर कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग अथवा कुण्डलिनीयोग आदि सभी योगों का समावेश हो जाता है। उसका संकुचित अर्थ करने से वह केवल अष्टांगयोग अथवा महर्षि पतंजलि द्वारा प्रवर्तित राजयोग का ही वाचक प्रतीत होती है।

चतुर्विध योग

जिस प्रकार एक ही अंगा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के उपयोग में नहीं आ सकता, इसी प्रकार एक ही मार्ग सब लोगों के लिये अनुकूल नही हो सकता। मनुष्य चार प्रकार के होते है–कर्मप्रधान, भकित प्रधान, योग प्रधान और दार्शनिक अथवा बुद्धिप्रधान, अतः उनकी प्रकृति के अनुकूल मार्ग भी चार ही है, यद्यपि उन सबका लक्ष्य एक ही है–परमतत्व की उपलब्धि। मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी प्राप्तव्य स्थान एक ही है। इस परम तत्व को उपर्युक्त चार प्रकार के मनुष्यों की भिन्न-भिन्न दृष्टियों से उपलब्ध करने के जो चार मार्ग बताये गये हैं उन्हीं को कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग के नाम से पुकारते है।

ये चारों मार्ग परस्परविरोधी न होकर एक दूसरे के सहायक है। ये इस बात के द्योतक हैं कि हिन्दू-धर्म के भिन्न-भिन्न मार्गों में परस्पर सामंजस्य है। धर्म के द्वारा समग्र मनुष्य का–उसके हृदय, मस्तिष्क और हाथ तीनों अंगों का संस्कार एवं विकास होना चाहिये। तभी वह पूर्णता को प्राप्त हो सकता है। एकदेशीय विकास अभिनन्दनीय नही है। कर्मयोग से मल का नाश होता है, चित्त की शुद्धि होती है और हाथों में कुशलता आती है। भक्तियोग से विक्षेप दूर होता है और हृदय का विकास होता है। राजयोग से मन की स्थिरता एवं एकाग्रता निष्पन्न होती है। ज्ञान योग से अज्ञान का आवरण हटकर इच्छा एवं बुद्धि का विकास होता है और आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है। अतः साधक को चाहिये कि वह चारों प्रकार के योग का अभ्यास करें। अध्यात्म मार्ग में तेजी के साथ आगे बढ़ने के लिये हम ज्ञान योग को मुख्य आधार बनाकर अन्य योगों का सहायक रूप में साधन कर सकते है।

सर्वांगीण विकास आवश्यक है

कर्म, भाव और बुद्धि ये तीन घोड़े इस शरीररूपी रथ में जुड़े हुये है। इन तीनों के व्यापार में पूर्ण सामंजस्य होना चाहिये, तभी रथ आसानी से चल सकता है। समस्त अंगों का विकास होना चाहिये, हमारा मस्तिष्क शंकर का सा, हृदय बुद्ध का-सा और हाथ जनक के-से

होने चाहिये। भक्ति शून्य वेदान्त बिल्कुल रसहीन हो जाता है। ज्ञानविरहित भक्ति पूर्ण नही होती, और जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, आत्मा के साथ अपनी एकता का अनुभव कर लिया है वह अपने आत्मरूप जगत की सेवा किये बिना कैसे रह सकता है ? भक्ति ज्ञान से वियुक्त नहीं है, बल्कि यों कहना चाहिये कि ज्ञान भक्ति की पूर्णता मे सहायक है।

विरोध का परिहार

इस प्रश्न को लेकर लोगों मे बड़ा मतभेद है कि ज्ञान भक्ति का आवश्यक अंग है या नही। कुछ लोग कहते है कि ज्ञान भक्ति का साधन है। उन लोगों का कहना यह है कि भगवान् को बिना जाने हम उनकी भक्ति कैसे कर सकेंगे। कुछ प्रसिद्ध भक्त ऐसा कहते है कि ज्ञान और भक्ति बिल्कुल स्वतन्त्र साधन है। वे अपने अनुभव के आधार पर पूर्ण निश्चय के साथ यह कहते है कि भक्ति स्वयं साध्य रूपा है और उसकी सफलता के लिये ज्ञान की आवश्यकता नही है। बिजली के रहस्यों को जानने वाला इंजीनियर यदि किसी अँधेरी रात को घने जंगल मे पड़ जाय और वहाँ से निकलने का रास्ता उसे न मिले तो निरा बिजली का ज्ञान उसके क्या काम आवेगा ? क्या अन्न के ज्ञानमात्र से किसी की भूख बुझ सकती है।

भक्ति और ज्ञान परस्पर विरोधी है, ऐसा कहना निरी मूर्खता है। पूर्ण ज्ञान ही प्रेम है और पूर्ण प्रेम ही ज्ञान है। पराभक्ति और ज्ञान एक ही वस्तु है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं–

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

(गीता १०।१०)

'इस प्रकार जो मुझमें निरन्तर मन को लगाकर प्रेम से मेरा भजन करते है उनको मैं वह ज्ञान देता हूँ जिसके द्वारा वे मुझे प्राप्त कर लेते है।'

गीता मे अन्यत्र भी कहा है–'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्**' (श्रद्धा अर्थात् भक्तिवान् को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।)

राजयोग

(१) आठ अंग

राजयोग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अंग है। यम का अर्थ है आत्म निग्रह अर्थात् अहिंसा (किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना), सत्य, अस्तेय (चोरी नही करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (निर्लोभता) का अभ्यास करना। शौच (बाहर भीतर की पवित्रता) संतोष, तप (स्व-धर्मपालन के लिये कष्ट सहन करना), स्वाध्याय (वेदादि जप-कीर्तन आदि) और ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर की उपासना करना तथा सारे कर्मों का फल उन्हें अर्पण कर देना)–इन पाँच व्रतों के पालन का नाम **नियम** है। यम-नियम के अभ्यास से योगाभ्यासी की चित्तशुद्धि होती है। मैत्री, करुणा और मुदिता को बढ़ाने से घृणा, ईर्ष्या और हृदय की कठोरता का नाश होकर मन को शान्ति मिलती है। आसन साधने से शरीर स्थिर और दृढ़ हो जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से चित्त का विक्षेप दूर होता है और प्रकाश के आवरण भूत रज और तमका नाश होता है। प्राणायाम करने वाले का शरीर भी हलका हो जाता है। प्रत्याहार (इन्द्रियों की विषयों से निवृत्ति) के अभ्यास से साधक को मनोबल और मानसिक शान्ति मिलती है। मन को एकाग्र करने का नाम धारणा है। ध्यान कहते है किसी वस्तु के निरन्तर चिन्तन को। समाधि तुरीयावस्था का नाम है। धारणा, ध्यान और समाधि, इनके युगपत् अभ्यास का नाम संयम है। बाह्य पदार्थों

मे संयम करने से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है और इस पंच महाभूतों से बने हुए जगत् और उनसे भी सूक्ष्म पंच तन्मात्रों के रहस्यों का ज्ञान होता है। इन्द्रिय, अहंकार, मन इत्यादि पर संयम करने से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ और अनुभव प्राप्त होते है।

(२) अष्ट सिद्धियाँ

अष्ट महासिद्धियाँ ये है-(१) अणिमा (अपने को अणु के सदृश सूक्ष्म बना लेना), (२) महिमा (अपने को पर्वत के समान विशालकाय बना लेना), (३) लघिमा (अपने शरीर को रूई के समान हलका बना लेना), (४) गरिमा (अपने शरीर को लोहे के पर्वत-जैसा भारी बना लेना, (५) प्राप्ति (चन्द्रमा को उँगली के अग्रभाव से छू लेना), (६) प्राकाम्य (सब प्रकार की इच्छाओं का पूर्ण हो जाना), (७) ईशित्व (सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति) और (८) वशित्व (सब पर शासन करने तथा पंच महाभूतो पर विजय प्राप्त कर लेने की शक्ति)

(३) समाधि के अवान्तर भेद

योगी क्रमशः योग की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं पर आरूढ़ होकर अनेक प्रकार के अनुभव, ज्ञान और शक्तियाँ प्राप्त करता है। उसे पहले सवितर्क और निर्वितर्क समाधि सिद्ध होती है और इसके अनन्तर वह सविचार एवं निर्विचार समाधि मे प्रवेश करता है। अन्त मे जाकर वह सानन्द एवं सस्मित समाधि का आनन्द लूटता है। इन निम्न श्रेणी की समाधियो मे आलम्बन (आधार), संस्कार और ध्याता-ध्यान-ध्येयरूप त्रिपुटी विद्यमान रहती है। इन समाधियो से मोक्ष की प्राप्ति नही होती। जो योगी सबसे ऊँची असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त करना चाहता है उसके लिये ये निम्न स्तर की समाधियाँ अन्तरायरूप है। असम्प्रज्ञात समाधि के सिद्ध हो जाने पर जन्म-मृत्यु के कारण भूत संस्कार बीज निःशेषतया भर्जित हो जाते है।

(४) राजयोगियों के चार भेद

योगी भी चार प्रकार के होते है। इनमें से पहली श्रेणी के योगी 'प्रथमकल्पित' कहलाते है। ये बिल्कुल नौसिखिए होते है। इनके अन्दर प्रकाश की झलकमात्र दिखलायी देती है। इन्हे सिद्धियाँ प्राप्त नही होती। ये लोग सवितर्क समाधि का अभ्यास करते है। दूसरी श्रेणी के योगी 'मधुभूमिक' कहलाते है। ये लोग निर्वितर्क समाधि में प्रवेश कर ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त किये हुए रहते है। इस भूमिका को 'मधुमती' भूमिका कहते है, जिसका कारण यह है कि इसके अन्दर हमें वह ज्ञान प्राप्त होता है जो मधु के समान आनन्द दायक एवं तृप्तिकारी है। तीसरी श्रेणी के योगियो का नाम है 'प्रज्ञाज्योतिः'। ये लोग पंच महाभूतो और इन्द्रियो को जीते हुए रहते है। इस श्रेणी के योगी देवताओं के भी प्रलोभन मे नही आते। इस अवस्था का नाम 'मधुप्रतीक' है। चौथी श्रेणी के योगियो का नाम है 'अतिक्रान्तभावनीय।' ये योगी 'विशोका' और 'संस्कारशेषा' नामक भूमिकाओं पर आरूढ़ रहते है, ये कैवल्य को प्राप्त होते है।

राजयोगी बिना संयम किये ही प्रतिभा से सारी सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। उच्चतम ज्ञान का नाम 'प्रसंख्यान' है जो विवेकख्याति अर्थात् प्रकृति और पुरुष के भेदज्ञान से उत्पन्न होता है।

इस ज्ञान को प्राप्त हुए योगी के अन्दर अब 'धर्ममेघ' समाधि का उदय होता है। उसे परवैराग्य की प्राप्ति होती है। वह सब प्रकार की सिद्धियो से, यहाँ तक कि सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्व आदि से भी मुँह मोड़ लेता है, क्योंकि वह जानता है कि ये सारी-की-सारी सिद्धियाँ सर्वोच्च समाधि की प्राप्ति मे अन्तराय

रूप ही है। तब उसे असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है, जिससे जन्म-मृत्यु के कारण भूत सारे संस्कार निःशेषरूप से दग्ध हो जाते हैं।

इस स्थिति को प्राप्त हुआ योगी बिना नेत्रों के देखता है, बिना जिह्वा के रसास्वाद करता है, बिना कानों के सुनता है, बिना नाक के सूँघता है और बिना त्वचा के स्पर्श करता है। वह संकल्पमात्र से अगणित चमत्कार कर सकता है। उसकी इच्छा से ही सब कुछ हो जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक (१।२५) में इस स्थिति का इस प्रकार वर्णन मिलता है-

'नेत्रहीन ने मोती बींध दिया; बिना उँगली वाले ने उसमें धागा पिरो दिया, कण्ठहीन ने उसका हार पहन लिया और जिह्वा हीन ने उसकी प्रशंसा की।'

(५) कैवल्य

अन्ततोगत्वा पुरुष अपने ऐश्वर्यमय अथवा कैवल्यात्मक स्वरूप की उपलब्धि कर लेता है। वह प्रकृति और उसके कार्यों से सर्वथा असम्पृक्त रहता है। वह अपने को सर्वथा स्वतन्त्र (मुक्त) अनुभव करता है और राजयोगी के चरम लक्ष्य कैवल्य को प्राप्त हो जाता है। अब उसके समस्त क्लेशकर्म नष्ट हो जाते हैं। गुणों का कार्य भोग और अपवर्ग-सिद्ध हो जाने के कारण अब उनका कार्य बिल्कुल बन्द हो जाता है। अब उसका ज्ञान सारा-का-सारा एककालिक हो जाता है। भूत और भविष्य उनके लिये वर्तमान में मिल जाते हैं। प्रत्येक वस्तु वर्तमान हो जाती है, सामने आ जाती है। ऐसा योगी देश-काल को अतिक्रमण कर जाता है। कैवल्यप्राप्त योगी के अनन्त ज्ञान के सामने त्रैलोक्य का समग्र ज्ञान भण्डार तथा समस्त लौकिक विद्याओं का ज्ञान कुछ नहीं है, निःसार है। जय हो, जय हो ऐसे महान् योगियों की! उनका आशीर्वाद हम सबको प्राप्त हो।

हठयोग

हठयोगी का जोर आसन, बन्ध, मुद्रा और प्राणायाम पर अधिक रहता है। उसे शरीर के निम्न भाग में स्थित मूलाधार चक्र के अन्दर सोयी हुई कुण्डलिनी-शक्ति को जगाकर उसे शेष पाँच चक्रों के मार्ग से सहस्रार चक्र में ले जाने की धुन सवार रहती है। यह सहस्रार चक्र मस्तक के ऊर्ध्व भाग में ब्रह्मरन्ध्र के समीप स्थित है। वहाँ कुण्डलिनी-शक्ति का शिव के साथ योग हो जाता है। तब योगी निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर मुक्ति एवं भुक्ति (आध्यात्मिक आनन्द) दोनों प्राप्त कर लेता है। प्राणायाम का अभ्यास करते समय उसे चार अवस्थाओं का अनुभव होता है जिन्हें 'आरम्भावस्था', 'घट-अवस्था', 'परिच्छाया-अवस्था' और 'निष्पत्ति-अवस्था' कहते हैं।

भक्तियोग

भक्त श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन रूप नवधा भक्ति का अभ्यास करता है। वह अपनी रुचि, प्रकृति, साधन की योग्यता तथा स्थिति के अनुसार शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य इन पाँच भावों में से किसी एक भाव का वरण करता है और सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त होता है।

उसको इस प्रकार की मुक्ति क्रममुक्ति कहलाती है। इस क्रममुक्ति को प्राप्त भक्त ब्रह्मलोक में जाकर वहाँ महाप्रलय पर्यन्त ब्रह्मा के समीप रहता है और तदन्तर ईश्वर के साथ ही निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाता है।

ज्ञानयोग

ज्ञानयोग का साधक मुक्ति के चार साधनों-विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम,

तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान) और मुमुक्षुत्व को बढ़ाता है। तदनन्तर वह श्रुतियों को सुनता है, फिर मनन करता है और अन्त में निदिध्यासन करता है, वह प्रणव के तथा जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादक **'तत्वमसि'** वाक्य के वास्तविक अर्थ का ध्यान करता है। इस साधन को अन्तरंग साधन कहते हैं। तब उसे आत्मसाक्षात्कार अथवा ब्रह्मानुभव होता है।

प्रारम्भ में उसे सविकल्प श्रेणी की शब्दानुविद्ध एवं दृश्यानुविद्ध समाधि होती है। फिर वह अद्वैतभावना रूप (वृत्तिसहित) समाधि में प्रवेश करता है और अन्त में अद्वैतावस्थान रूप (वृत्ति रहित) समाधि को प्राप्त होता है। ज्ञान योग की सात भूमिकाएँ हैं, जिन पर साधक क्रमशः आरूढ़ होता है। इनके नाम हैं शुभेच्छा, सुविचार, तनुमानसी, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावनी और तुरीय।

ज्ञानी सद्योमुक्ति अथवा आत्यन्तिक प्रलय को प्राप्त होता है। वह किसी लोकविशेष में नहीं जाता। उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता। स्थूल शरीर का पतन होते ही वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का भेद

ज्ञानी को जीवित अवस्था में ही विदेहमुक्ति मिल जाती है। ज्ञानी जब सत्वापत्ति नामक चतुर्थ भूमिका पर आरूढ़ होता है तो उसी समय वह जीवन्मुक्त हो जाता है। जब उसके अन्दर देहाभिमान लेशमात्र भी नहीं रहता तब उसे विदेहमुक्त कहते हैं। तुरीयावस्था को प्राप्त होने पर ज्ञानी जीवन्मुक्त कहलाता है। वही जब तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त होता है तब उसे विदेहमुक्त कहते हैं। ज्ञानी को जब जगत-अवस्था स्वप्नवत् भासने लगती है तब वह जीवन्मुक्त कहलाता है। वही जगत्-अवस्था जब उसके लिये सुषुप्ति के समान हो जाती है तब उसकी विदेहमुक्त-अवस्था कहलाती है। जिस अवस्था में चित्त का अरूप नाश होता है, उस अवस्था को जीवन्मुक्ति कहते हैं। जिस अवस्था में उसका स्वरूप नाश हो जाता है उसे विदेहमुक्ति कहते हैं। जीवन्मुक्त संसार में रहकर संसार का कार्य कर सकता है। भगवान शंकराचार्य जीवन्मुक्त थे। भगवान श्री दत्तात्रेय और जडभरत विदेहमुक्त थे। वास्तव में इनकी आभ्यन्तरिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं है।

भक्त और ज्ञानी की तुलना

ज्ञान योगी इस दुस्तर भवसरिता को तैरकर पार करता है। भक्ति योगी उसी को भक्ति रूप नौका पर आरूढ़ होकर पार करता है। ज्ञानी आत्मनिर्भरता तथा आत्मबल का आश्रय लेकर ज्ञान प्राप्त करता है। भक्त आत्मसमर्पण के द्वारा भगवान् का साक्षात्कार करता है। ज्ञानी अपने स्वरूप को पहचान कर अपने अहंकार का विस्तार कर देता है। भक्त अपने आप को भगवान् के अर्पण कर देता है, भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन कर देता है और उनके सामने दीन-हीन बन जाता है। भक्त मिश्री का स्वाद लेना चाहता है। ज्ञानी स्वयं मिश्री बनना चाहता है। भक्त को क्रममुक्ति मिलती है। ज्ञानी को सद्योमुक्ति प्राप्त होती है। भक्त बिल्ली के बच्चे के समान भगवान् की सहायता की अपेक्षा रखता है और भगवान् को असहाय होकर पुकारता है। ज्ञानी बँदरिया के बच्चे की भाँति स्वयं दृढ़ता पूर्वक अपनी माता की छाती से चिपट जाता है।

ज्ञानी और योगी की तुलना

ज्ञानी चलते-फिरते, खाते-पीते तथा बात-चीत करते हुए भी अपना साधन कर सकता है। उसे किसी एकान्त कोठरी में आसन लगाकर बैठने

की आवश्यकता नही है। राजयोगी को अभ्यास के लिये आसन की भी अपेक्षा है और अलग स्थान की भी। ज्ञानी सर्वदा समाधि (सहज अवस्था) मे स्थित रहता है। उसकी नित्य-दृष्टि होने से वह माया के वशीभूत नही होता। ज्ञानी के लिये 'समाधि' तथा 'व्युत्थान' दो अवस्थाएँ नही होती। परन्तु योगी जब समाधि से नीचे उतरता है उस समय उसे माया फिर घेर लेती है। जिस प्रकार हम किसी शीशी का मुँह ढक्कन से बन्द कर देते है। उसी प्रकार राजयोगी भी अपने प्रयत्न से चित्त रूपी शीशी का मुँह बन्द कर देता है, जिससे उसके अन्दर वृत्तियों का आना-जाना बन्द हो जाता है। दूसरे शब्दों में, वह चित्त रूपी बर्तन को बिल्कुल खाली कर देता है। ज्ञानी अपनी वृत्तियों का इस प्रकार निरोध नही करता। वह उनका साक्षी बन जाता है। वह अपने सात्विक अन्तःकरण से ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न करता है। ज्ञानी अपने सत्संकल्प के द्वारा सिद्धियों को प्रकट करता है; राजयोगी धारणा-ध्यान समाधि के समवाय रूप संयम के द्वारा ऐसा करता है। राजयोगी की साधना मन से प्रारम्भ होती है। ज्ञानी अपना अभ्यास बुद्धि और इच्छा शक्ति के आधार पर करता है।

हठयोगी और राजयोगी की तुलना

हठयोगी का सम्बन्ध स्थूल शरीर और प्राणवायु के निग्रह से है। राजयोग का सम्बन्ध मन से है। राजयोग और हठयोग अन्योन्याश्रित है। वे एक दूसरे के आवश्यक सहकारी अंग है। दोनों का ज्ञान हुए बिना कोई पूर्ण योगी नही बन सकता।

हठयोगी का समुचित अभ्यास जहाँ समाप्त होता है वही से राजयोग का प्रारम्भ होता है।

हठयोग की साधना शरीर और प्राण से शुरू होती है। राजयोग की साधना का मन से प्रारम्भ होता है।

हठयोगी प्राण और अपान वायु को संयुक्तकर उन्हे भिन्न-भिन्न चक्रों में से ले जाता है। तब उसे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। राजयोगी को उपर्युक्त संयम से सिद्धियाँ प्राप्त होती है। ज्ञानी इन्ही सिद्धियों को सत्संकल्प से प्रकट कर देता है। भक्त आत्मसमर्पण द्वारा भगवत्कृपा को प्राप्त कर सारे ऐश्वर्यों का स्वामी बन जाता है।

उपसंहार

शास्त्र अनन्त है; जानने की बाते बहुत सी है; समय अति स्वल्प है, उस पर अनेकों विघ्न है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह केवल सार को ग्रहण करे, जिस प्रकार हंस पानी मिले हुए दूध में से केवल दूध को ले लेता है और पानी को छोड़ देता है।

हे अमृत के पुत्रो ! जागो अपनी आँखें खोलो। संसार के दुःखों का स्मरण करो। मृत्यु को याद करो। महात्माओं को याद करो। ईश्वर को याद करो। उसके नामों का गान करो। भक्ति का साधन करो। नवधा भक्ति का अभ्यास करो। भागवतों की सेवा करो। भगवान् की अन्तःस्थित सत्ता का सर्वत्र अनुभव करो। भगवान् की अन्तःस्थित सत्ता का सर्वत्र अनुभव करो। श्रीकृष्ण का दर्शन इसी जीवन में, नहीं, इसी क्षण में प्राप्त करो। दिव्य भागवत अथवा जीवन्मुक्त बनो और सर्वत्र, चारों दिशाओं में सुख, शान्ति और आनन्द की वर्षा करो।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र को सर्वदा रटते रहो। तुम सब पर भगवान् नन्दनन्दन की कृपा बरसती रहे।

✻✻✻

पुराणों में योगदर्शन

हरिप्रसाद शास्त्री

कुछ समय पूर्व मैंने इसी उपर्युक्त शीर्षक के आधार पर योग के अष्टांगों में से प्रथम दो 'यम-नियम'' योगांगों का विवेचन किया था अब उससे आगे के आसनादि योगांगों के विषय में ही विचार व्यक्त करना उपयुक्त समझकर 'अग्नि पुराण' में उल्लिखित योगांगों के आधार पर अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

योगदर्शन में वर्णित योगांगों में तीसरा अंग ''आसन'' के नाम से अभिहित किया गया है।

आसन के विषय में अग्निपुराण में कहा गया है कि-

आसनं कमलाद्युकम् तद्बध्वा चिन्तयेद्हरिम्।
शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासन मात्मनः।। (अ०पु०अ० ३७३ श्लोक १)

अर्थात्-पद्मासन आदि आसन को बाँधकर हरि का ध्यान करना चाहिये। यहाँ विचारणीय बात यह है कि श्लोकार्थ में आदि शब्द के प्रयोग से अपनी सुविधानुसार अन्य आसन का चयन भी उपयुक्त होगा। पवित्र स्थान में अपना स्थिर आसन लगाकर ही ध्यान करना चाहिये।

आसन के विषय में पुराणकार ने यह भी कहा है-

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये। (अ०पु०अ० ३७३-२)

आसन अधिक ऊँचा या नीचा नहीं होना चाहिये। नीचे कपड़े का उसके ऊपर मृगचर्म का तथा उसके ऊपर कुशा का आसन बिछाने का निर्देश किया गया है। उसी आसन पर बैठकर मन को एकाग्र करके तथा चित्त तथा इन्द्रियक्रिया कलाप को नियन्त्रित करते हुये आत्मशोधनार्थ योगका अभ्यास करना चाहिये।

ध्यान करते समय की स्थिति बतलाते हुये कहा है कि-

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।
समंकाय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं शिरः।। (अ०पु०अ०३७३-३)

अर्थात्-ध्यान के समय शरीर-ग्रीवा-शिर को सीधे रखते हुये तथा शिर को स्थिर रखकर इधर-उधर न देखकर अपनी नासिका के अग्रभाग पर ही दृष्टि रखनी चाहिये। ध्यान के लिये आसन के प्रकरण में पद्मासन को विशेष महत्व दिया गया है। उसी विषय में विधि बतलाते हुये कहा गया है कि-

पार्ष्णिभ्यांवृजणौरक्षंस्तथा प्रजननं पुनः।। (अ०पु०अ० ३७३-४)

अर्थात्-दोनों एड़ियों से अंडकोशों तथा जननेन्द्रिय को दबा करके दोनों ऊरुओं (ऊपरी जंघा) पर पैरों को रखकर दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग को बाँये हाथ की हथेली पर रखकर तथा धीरे से मुख को थोड़ा ऊपर करके थोड़ा आगे की ओर करके अपने उदरस्थ प्राणवायु का आयाम (निरोध) करना

चाहिये। इसी प्रकरण में आगे प्राणायाम की विधि के प्रसंग में भी विचार प्रस्तुत करना आवश्यक ही प्रतीत होता है।

प्राणायाम:-

प्राणायाम के विषय में जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि अपने शरीरस्थ प्राणवायु को नियंत्रित करना ही प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम तीन प्रकार का होता है-१-रेचक, २-पूरक, ३-कुंभक।

इस तीनों प्रकार के प्राणायाम की विधि का उल्लेख करते हुये पुराण में कहा गया है कि-

रेचक प्राणायाम:-

नासिकापुटमंगुल्या पीडयैव च परेण च।
औदरं रेचयेद् वायुं रेचनाद् रेचक: स्मृत:।। (अ०पु०अ० ३७३-७)

अर्थात्-एक नासिकापुट को अंगुली से दबाकर दूसरे नासापुट से उदरस्थ वायु को बाहर निकालना चाहिये, यही रेचन क्रिया है। इसी रेचन क्रिया (नि:सरण) से ही यह रेचक प्राणायाम कहा जाता है।

पूरक प्राणायाम:-

पूरक प्राणायाम के विषय में पुराण में कहा गया है कि-

बाह्येन वायुना देहं दृतिवत् पूरयेत् यथा।
तथा पूर्णश्च संतिष्ठेत् पूरणात् पूरक: स्मृत:। (अ०पु०अ० ३७३ श्लोक ८)

अर्थात्-बाहर की वायु से देह को पूर्णरूप से नाक द्वारा खींचकर भर लेना चाहिये तथा पूर्णरूप से भरकर अन्दरस्थित रखना चाहिये। वायु से शरीर को भरने के कारण ही इसे पूरक प्राणायाम की संज्ञा दी गयी है।

कुंभक प्राणायाम:-

कुंभक प्राणायाम के विषय में भी पुराण में इस प्रकार का वर्णन मिलता है :-

न मुंचति न गृह्णाति वायुमन्तर्बहि: स्थितम्।
संपूर्ण कुंभवत् तिष्ठेत् अचल: सतु कुंभक :।। (अ०पु०अ० ३७३ श्लोक ९)

अर्थात्- न तो अन्त: स्थप्राणवायु को बाहर निकाला जाय और न बाह्य वायु को ग्रहण किया जाय, तथा भरे पूरे घड़े की तरह प्राणवायु से शरीर को परिपूर्ण करके स्थित हो जाय। वायु से शरीर को घड़े की तरह वायु से पूर्ण करने के कारण ही इसका नाम कुंभक प्राणायाम रखा गया है।

प्राणायाम में एकबार उद्घात हो तो वह न्यून और मध्यम में दीवार उद्घात होता है तथा तीन बार उद्घात होने पर उत्तम कहाता है। प्राणायाम के समय पसीना आवे तथा कंपन या अभिघात हो तो क्रमश: उत्तमोत्तम होता है।

प्राणायाम के द्वारा प्राणों पर विजय प्राप्त करने पर मूत्र-पुरीष आदि विकार स्वल्प मात्र ही होते हैं।

प्राणायाम से आरोग्य की प्राप्ति होती है, तथा शीघ्रगामिता आ जाती है। स्वरसौष्ठव भी प्राप्त होता है। प्राणायाम से ही बल बढ़ता है, तथा सौन्दर्य में भी वृद्धि होती है। तथा दोषों का क्षय हो जाता है।

अतः इन्द्रियों पर विजय प्राप्ति के लिये प्राणायाम की महती आवश्यकता सिद्ध होती है। ज्ञान एवं वैराग्य से युक्त होकर तथा प्राणायाम के अभ्यास द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सभी कुछ जीता जा सकता है।

इन्द्रियाँ ही स्वर्ग और नरक कही गई है। यदि वही इन्द्रियाँ नियंत्रित हो जावें तो स्वर्गफल प्रदायक है। और यदि वही इन्द्रियाँ निर्बाध एवं स्वतन्त्रतापूर्वक छोड़ ही जाँय तो नरकफल प्रदायक सिद्ध हो जाती है।

प्रत्याहार :–अब आगे योगांग प्रत्याहार के विषय मे भी कुछ विचार करना आवश्यक है। प्रत्याहार के विषय में अग्निपुराण मे उद्धृत है कि–

शरीरं रथमित्याहुरिन्द्रियाण्यस्य वाजिनः।
मनश्च सारथिः प्रोक्तः प्राणायामः कशः स्मृतः। (अ०पु०अ० ३७३ श्लोक ७)

अर्थात्:–शरीर को रथ कहा गया है और इन्द्रियाँ इस शरीर रूप रथ के घोड़े है तथा मन इस रथ का सारथि है, एवं प्राणायाम रूप इस शरीरस्थ की इन्द्रिय रूप घोड़ों को नियंत्रित करने के लिये चाबुक है।

ज्ञान–वैराग्य रूपी रस्सियों से माया ने मन को बाँध रखा है, वही मन प्राणायाम द्वारा इन्द्रिय शमन के कारण स्वचांचल्य से मुक्त होकर एकाग्र हो जाता है।

प्रत्याहार के विषय मे पौराणिक विचार यहाँ है कि–

जलबिन्दुं कुशाग्रेण मासे मासे पिबेत्तुयः।
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समः।।
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि प्रविश्य विषयोद धौ।
आहृत्य यो निगृह्णाति प्रत्याहारः स उच्यते।। (अ०पु०अ० २७३ श्लोक १९–२०)

अर्थात्–यदि कोई व्यक्ति सौ वर्षों तक कुशा के अग्रभाग से प्रतिमास जल की बूँद को पीता रहे, तो उससे जो लाभ प्राप्त होता है, तथा उसमें जो तप होता है, वही फल एवं तप प्राणायाम से होता है। इसी प्रसंग मे आगे कहा है कि विषय रूप सागर मे प्रवेश करके, वहाँ से इन्द्रियों को लाकर जो वश मे कर लेता है, वही प्रत्याहार कहलाता है। अर्थात् विषय सागर में से इन्द्रियों को निकाल कर वश मे कर लेना ही प्रत्याहार है।

आहार शब्द मे पूर्व मे 'प्रति' उपसर्ग जोड़ देने से ही प्रत्याहार शब्द निष्पन्न होता है। यद्यपि आहार शब्द का अर्थ भोजन होता है, तथापि प्रति उपसर्ग जोड़ने से उसका अर्थ परिवर्तित होकर 'आहरण' अर्थ हो जाता है।

इस विषय मे एक व्याकरण का नियम भी है।

यथा– **उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।**
प्रहाराहार संहार विहार परिहारवत्।।

उपर्युक्त उदाहरणों में ह्र हरणे धातु के रूपों मे विभिन्न उपसर्गों के संयोग से शब्द विभिन्नार्थक हो गये है। शेष योगांगों के विषय में आगे विचार होगा। ※※※

नीली छत वाली माँ

(रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर)

माँ अवतार होती है, माँ साकार होती है, माँ आँखों देखा एक चमत्कार होती है।
माँ करतार होती है, माँ दातार होती है, माँ रिद्धि सिद्धि का एक भण्डार होती है।।
माँ पुकार होती है, माँ फुहार होती है, माँ रुन-झुन करती आँगन का श्रृंगार होती है।
माँ सीमित होकर बच्चों का संसार होती है, माँ असीम होकर हर दिल की झंकार होती है।।

माँ दोष मिटाने के लिए तलवार होती है, माँ तूफान मे भी किश्ती की पतवार होती है।
माँ की ममता मोह नही प्यार की धार होती है, माँ प्यार से भी ऊँची एक मीनार होती है।।
माँ दुखड़े हर लेने को सब तैयार होती है, माँ साहस और वीरता का आधार होती है।
माँ बच्चे की हर खुशियो का बाजार होती है, माँ खुदा कहलाने की भी हकदार होती है।।

माँ निश्छल प्यार की मूर्ति का दरबार होती है, माँ दोस्ती की दहलीज का एक द्वार होती है।
माँ आराम का एक वृक्ष छायादार होती है, माँ बच्चे की हर शिक्षा का किरदार होती है।।
माँ बच्चे के आँसू पीने का एक जार होती है, माँ दुख पीकर खुशियों का अम्बार होती है।
माँ बच्चे के चरित्र का कर्णधार होती है, माँ खुदी मिटाकर खुदाई का एक सार होती है।।

माँ जीवन की छाती और गले का हार होती है, माँ बच्चों के कदमो का जोश दमदार होती है।
माँ मुसीबत मे सागर की गहरी ज्ञानाधार होती है, माँ बच्चे के मन दर्पण का संस्कार होती है।।
पर इतनी विराट होकर भी माँ लाचार होती है, बच्चे की प्रारब्ध के आगे माँ की हार होती है।
खुद भी प्रारब्ध के हाथों भस्मासार होती है, दूध पीते बच्चे छोड़ मृत्यु का आहार होती है।।

जब मृत्यु रूपी रथ पे माँ सवार होती है, सच्चाई समझ मे आती, ये भी झूठी यार होती है।
मरने के बाद माँ पत्थर की दरार होती है, खुद शिला बन दिल पर एक प्रहार होती है।।
माँ देकर यादे रुलाने को आँसू चार होती है, इसकी यादे दिल मे खंजर सा हथियार होती है।
इसकी मूरत डसती निशदिन फुंकार होती है, स्पर्श की यादे विष का सा संचार होती है।।

माँ ही मोह का सबसे बड़ा संसार होती है, माँ ही माया की तरह नचावन हार होती है।
माँ से मोह व मोहब्बत दोनो मे लुटिया, धार होती है, माँ खुद एक मझधार होती है।।
व्रत ले बस सेवा की इसकी क्योंकि खुदा का ये, एकदम पहला प्यार होती है।
सेवा देह की हो, देह पाने की न हो, देह तो माटी का ही आकार होती है।।

दई बाँट माँ की देह का, इसकी देह, निष्काम कर्म का व्यापार होती है।
पर देह मे मत खोजाना, देह तो, सबकी ही धोखे का विस्तार होती है।।
भगवान मान तू इसके अहसान को, जो जन्म से तेरी देह का भार ढोती है।
भगवान मान तू इसके प्यार को, जो तेरी छवि में साधना का एक तार होती है।।

पर ये माँ भी नीली छत वाले की, रचना का, एक अंग व आकार होती है।
असली माँ तो ऊपर वाली ही सरकार होती है, जो रोम-रोम में निराकार होती है।।
नीली छत वाली माँ, सबकी माँ, वह सबकी, व दुनिया उसका परिवार होती है।
वह माँ कभी रूठती, न बिछुड़ती, न मरती, वही तेरे आनन्द का मूलाधार होती है।।

जन्म देते ही जो माँ मृत्यु का शिकार होती है, प्रकृति माँ उस शिशु का पालनहार होती है।
समझे न अनाथ कोई खुद को, माँ के मरने पर, नीली छत वाली माँ उदार होती है।।
किसी न किसी दिल में भर देगी प्यार, ऊपर वाली माँ प्यार का भी प्यार होती है।
अन्न-धन देती सबको, सबका दुलार होती है, असली माँ तो ऊपर वाली ही सरकार होती है।।

पर जो तोड़ेगा लौकिक माँ का दिल, नीली छत वाली तब कोप का अंगार होती है।
जो सेवा करेगा लौकिक माँ की, उस पर, ऊपर वाली माँ की दया अपार होती है।।
सेवा को साधना मानता, फल चाहता नहीं, वह औलाद श्रवण कुमार होती है।
नीली छत वाली माँ, उसे आकर मिलती, वही सन्तान मोक्ष की हकदार होती है।

❊❊❊

योगानुष्ठान हेतु विनम्र आमंत्रण

श्री प्रभुजी की करुणा-कृपा से श्री सिद्धगुफा दिव्य ध्यान योग संस्थान (रजिस्टर्ड) ग्वालियर रोड, इटावा में योगानुष्ठानकर्ताओं के लिए समस्त आवश्यक सुविधाएँ एवं अनुकूल वातावरण उपलब्ध है। सभी गुरु-भाई बहिनों से आग्रह है कि आगमन से पूर्व निम्न पते पर अवश्य सम्पर्क कर लें।

संरक्षक :	सचिव :	अध्यक्ष
ब्र० शम्भूनाथ	धर्मनारायण त्रिपाठी	आचार्य बृजमोहन वशिष्ठ
उर्फ मोतीबाबा	अवकाश प्राप्त पी.सी.एस.	उर्फ विदुरजी महाराज

श्री सिद्धगुफा दिव्य ध्यान योग संस्थान, ग्वालियर रोड, इटावा ● फोन (05688) 56036

सद्गुरु कृपा हि केवलम्

प्रेषक: अंशुमान देव मालवीय, वाराणसी

मनुष्य जीवन का एकमात्र सहारा धर्म है जिससे मनुष्य प्रभु तक पहुँच सकता है। मनुष्य अपने धर्म पर चले तो समाज के समाने एक आदर्श बन सकता है; परन्तु आज मनुष्य धर्म पर विश्वास नहीं करता है और पाश्चात्य संस्कृति को अति उत्तम मानता है। परन्तु अपना हिन्दू धर्म एवं संस्कृति तो पूरे संसार मे प्रसिद्ध है और इसके सार (तत्व) को समझने एवं परखने के लिए पाश्चात्य संस्कृति हमेशा लालायित रहती है। हमारे देश के कुछ लोग इन सबको समझने की जरूरत नही समझते, और विषय भोग को ही संसार का सबसे उत्तम सुख मानते है। मनुष्य यह नही समझता कि वह विषय को नही भोग रहा है, बल्कि विषय मनुष्य को भोग रहा है। सबसे बड़ा सुख तो त्याग, नियम, संयम, ब्रह्मचर्य सत्य के पालन में ही है। इन सब बातों को जान लेना इतना सरल काम नही है। इन सब चीजों को समझने के लिये तो सद्गुरु देव की आवश्यकता पड़ती है। और सद्गुरुदेव भी उन्ही पुरुषों को मिलते है-जो धर्म के सन्मार्ग पर चलते है, और जो पुरुष धर्म के सन्मार्ग पर चलता है उसको वर्तमान मे तो थोड़ा कष्ट अवश्य मिलता है, परन्तु उस मनुष्य का भविष्य बहुत ही सुखमय एवं शांतिपूर्वक बीतता है। जो धर्म को बिल्कुल नही मानता है उसका जीवन कभी सफल नही हो सकता। अगर मनुष्य को अपना जीवन सफल बनाना है तो धर्म के सन्मार्ग पर चलना ही श्रेयस्कर होगा।

जो मनुष्य सद्गुरु देव के चरण-शरण मे चला जाता है उसको अपने आप का ज्ञान हो जाता है, और जो शिष्य भक्ति की चरम सीमा तक पहुँच जाता है वह सद्गुरु देव के ही शरण में रहना पसन्द करता है तथा इसी को अति उत्तम सुख मानता है। सद्गुरुदेव तो मूल्यवान हैं जिनकी तुलना इस ब्रह्माण्ड में किसी से नही की जा सकती। सद्गुरु तो हमेशा अपने शिष्यों का लाभ ही सोचा करते हैं। सद्गुरु तो इतने सामर्थ्य ज्ञान, असाधारण, असीम शक्ति वाले एवं असीम कृपा करने वाले हैं कि वे अपने भक्तों की हर तरह से सहायता करते रहते हैं। वे शिष्य की सभी शंकाओं का समाधान और आध्यात्मिक जगत में शिष्य को प्रवेश कराते है। सद्गुरु ही मात्र ऐसे हैं जिनके द्वारा शिष्य की मुक्ति सम्भव है। सद्गुरु तो हम सब के लिये एक प्रत्यक्ष भगवान ही हैं। अधर्मी पुरुष इन सब बातों को समझ नही पाता है। जो धर्म के अनुयायी है वे मनुष्य सद्गुरु देव को ही एकमात्र आश्रय मानकर सद्गुरुदेव द्वारा बताये कठिन से कठिन लक्ष्य को भी पार ऐसे कर लेते है जैसे फूल की चादर पर सोकर उठकर आ रहे हो। सद्गुरु तो महान असीम कृपा करने वाले होते है। वे अपने शिष्यों के छोटे से छोटे कष्ट को भी दूर कर देते है और अपने शिष्य पर कष्ट की झलक तक नही पड़ने देते। सद्गुरु अपने शिष्यों की भलाई के लिये सब कुछ करते रहते हैं। शिष्य उनके लिये कुछ भी नहीं करता, यहाँ तक की उनके बताये मार्ग पर चलता तक नही जो उसके हित में ही उसके सद्गुरु उसे बता गये हैं। इसलिये हम सभी शिष्यों को चाहिए कि अपने गुरुदेव के बताये मार्ग पर ही हम सब चलें और सद्गुरु देव जी महाराज को एकमात्र सहारा मानकर इन्ही की आरती पूजन एवं कृपा चरित्र का वर्णन सदैव करते रहें। जिससे हम सब शिष्यों की भलाई हो सके और जीवन सफल बन सके।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटियों को ध्यान न देते हुए इसके पवित्र भावों को ग्रहण करने की कोशिश करें।

***

जीवन तत्व साधन

(पिछले अंक से आगे)

विटामिन सी.

रक्त को शुद्ध करता है। हड्डियों व दाँतो को शक्ति देता है। छूत के रोगों से बचाता है। इसकी कमी से भूख कम लगती है। खून सूख जाता है। साँस फूलने लगती है। दाँत व मसूढ़ों में पीव पड़ जाता है। हाथ-पैरों में दर्द और जोड़ों में सूजन आ जाती है यह सबसे अधिक आंवला मे पाया जाता है। १०० ग्राम आंवला खाने से १०० घण्टे के लिये विटामिन सी. मिल जाता है। नीबू, नारंगी, नासपाती, टमाटर, अंगूर, सेब आदि फलों मे भी पाया जाता है। जीवन तत्व साधन करने से यह विटामिन भी बढ़ जाता है।

विटामिन डी.

हड्डियों को दृढ़ तथा स्वस्थ रखता है। बच्चों के लिए अत्यधिक लाभदायक है। इसकी कमी से कमजोरी, चिड़चिड़ापन तथा हड्डियों मे निर्बलता आती है। चेहरा फीका पड़ जाता है। दौरे की बीमारी हो जाती है। सर्दी-जुकाम जल्दी-जल्दी होने लगता है। शरीर की बाढ़ रुक जाती है। बच्चों को सूखा रोग हो जाता है। हाथ-पैर दुबले हो जाते हैं। यह सूर्य की धूप मे अधिकता से पाया जाता है। दूध, घी, गाजर, मैथी, पपीता मे भी पाया जाता है।

विटामिन ई.

स्त्रियों के बांझपन तथा गर्भपात को रोकता है। मनुष्य मे सन्तान उत्पत्ति की शक्ति देता है। इसकी कमी से पेशाब के स्थान पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वह गेहूँ तथा दूसरे अनाजों के अंकुरों में हरे सागपात, ताजे दूध, मक्खन, मटर के छोटे पौधे शकर कन्दी और चौकर में पाया जाता है।

जीवन तत्व साधन करने वाले को विटामिन ए.बी.सी.डी. व ई. पर्याप्त मात्रा में मिलने लगता है। और उसका स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। शक्ति व उत्साह मे वृद्धि हो जाती है।

भोजन को नापने का एक उपाय बताया गया है। जिसे कैलोरी कहते है। हर मनुष्य को चौबीस घण्टे मे २५०० से ३००० कैलोरी का भोजन करना चाहिए। विज्ञान ने यह बता दिया है कि किस भोजन के पदार्थ में कितने गुण व कैलोरी है। अर्थात् किसी खाद्य पदार्थ को एक छटाँक खाने से कितनी देर तक उसका प्रभाव रहता है। जैसे १०० ग्राम गेहूँ खाने से हमे ढाई घण्टे के लिये प्रोटीन, एक घण्टे के लिए कैल्शियम, साढ़े चार घण्टे के लिए फास्फोरस, साढ़े तीन घण्टे के लिये लोहा, १२ मिनट के लिए विटामिन ए. ८ घण्टे के लिये विटामिन बी-१ तथा ११७ कैलोरी शक्ति मिलती है। प्रति १०० ग्राम खाद्य पदार्थों के गुण तत्व घण्टों में दिये गये है, जो किसी भी आहार पुस्तिका मे देखे जा सकते है। और उसी के अनुसार हम अपने भोजन नापकर जान सकते है कि हम जो भोजन करते हैं वह पर्याप्त गुण, तत्व व कैलोरी युक्त है या नहीं।

यदि हमारा भोजन ३००० कैलोरी तथा पर्याप्त गुण तत्व व विटामिन देने वाला है तो हम ''हित भुक्'' के अनुसार भोजन करते है। अन्यथा हमको अपने भोजन में परिवर्तन करना चाहिये।

अब आगे ''मित भुक्'' सम्बन्ध में बतायेंगे।

मित भुक्

मित भुक् का अर्थ है कि उचित मात्रा में खाओ, मलाई बहुत ताकत देती है तो आप दो सेर मलाई खा जायें, तीन सेर रबड़ी पेट में डाल लें या सेर भर मक्खन ही चट कर जायें तो इससे शरीर को लाभ के स्थान पर हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने बताया कि मित भुक् यानि अच्छी वस्तुएं खाओ मगर उचित मात्रा में खाओ। मर्यादा में रहकर खाओ। भगवान ने गीता में कहा है कि-

युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा।।

अर्थ- **जब युक्त सोना- जागना, आहार व विहार हों।**
हो दुखहारी योग जब, परिमित सभी व्यवहार हों।।

हर समय खाते रहने से भी काम नहीं बनेगा। आजकल का फैशन हो गया है कि बिस्तर से उठते ही चाय चाहिए, फिर काफी फिर नाश्ता, फिर लंच, फिर चाय, फिर रात का खाना, सोते समय दूध और न जाने क्या-क्या ? यह पेट एक डेगची है। इसमें एक सीमा से अधिक नहीं आता। किस समय क्या डालना चाहिए यह सोचकर डालना चाहिए। हर समय डालते रहने से काम नहीं चलेगा।

एक माँ दाल बना रही थी। चूल्हे पर डेगची रख कर दो मुट्ठी दाल उसने डेगची में डाल दी। आग जलने लगी। दाल अभी कुछ ही पकी थी कि दो अतिथि आ गये। उसने दो मुट्ठी दाल डेगची में और डाल दी। अभी यह दूसरी दाल अधपकी ही थी कि तीन अतिथि और आ गये। उसने तीन मुट्ठी दाल और डेगची में डाल दी। अब इस दाल का क्या बनेगा ? क्या वह कभी पकेगी ? कुछ अधिक पक जायेगी कुछ थोड़ी पकेगी और कुछ कच्ची रह जायेगी। यह पेट भी तो एक डेगची है। हर समय इसमें डालते रहने से हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने कहा कि मित भुक् खाओ, हितकारी भोजन खाओ मगर मर्यादा के अनुसार खाओ।

ऋत भुक्

केवल **हित भुक्** और **मित भुक्** से कार्य नहीं बनता। यदि सदैव नीरोग व स्वस्थ रहना है तो **ऋत भुक्** का पालन करना होगा। ऋत का अर्थ सत्य अर्थात् सत्य की कमाई से प्राप्त भोजन करो। जो लोग पाप का अन्न खाते हैं या रिश्वत, झूठ, भ्रष्टाचार से प्राप्त पैसों का भोजन करते हैं, कभी स्वस्थ नहीं रह सकते। पवित्र आत्माओं में ऐसे भोजन का प्रभाव तुरन्त दिखाई देता है। क्योंकि सफेद चादर पर पड़ा धब्बा तुरन्त दिखाई पड़ जाता है।

हरिद्वार के आश्रम में एक महात्मा ठहरे हुए थे। एक योग साधक उन्हीं के पास के कमरे में रहकर साधना करता था। एक दिन वह साधक महात्मा जी के पास आया और जोर-जोर से रोने लगा। महात्मा जी ने पूछा कि क्या हुआ आपको ! वह बोला महाराज जी! मेरी साधना ही नष्ट हो गयी। पूछने पर पता लगा कि वह योग साधक बहुत दिनों से आसन, प्राणायाम, ध्यान व धारणा की सीढ़ी पर आगे बढ़ रहा था। घण्टों ध्यान करता व आनन्द विभोर रहता। परन्तु एक रात उसके साथ एक अद्भुत घटना घटी। उसने रोते हुए बताया कि मैं ध्यान में बैठा था कि ऐसा प्रतीत हुआ कि

रोशनी में लाल दुपट्टे वाली एक लड़की खड़ी है। मैंने घबड़ा कर आँखें खोल दी। समझा कुछ भूल हो गई है। फिर ध्यान से ज्योति को देखा परन्तु वह लड़की अब भी वहीं थी। मैं उसे जानता नहीं, परन्तु बार-बार मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। मैंने बार-बार मुँह हाथ धोकर प्राणायाम व ध्यान करने का प्रयत्न किया है, बार-बार उसे हटाने का प्रयास किया है परन्तु वह तस्वीर नहीं हटती है। पता नहीं मुझको क्या हो गया है? महात्मा जी ने पूछा-किसी बुरे व्यक्ति की संगति में तो नहीं बैठे, कोई बुरी पुस्तक तो नहीं पढ़ी। उसने कहा कि ऐसा कुछ नहीं किया। महात्मा जी ने कहा कि आश्रम के बाहर तो नहीं गये थे। तो वह बोला कि एक भण्डारे में गया था। वहाँ खाना खाया था। महात्मा जी ने कहा कि जाकर पता लगाओ कि किसने भण्डार दिया था और क्यों दिया था ? उसने पता लगाकर बताया कि कलकत्ते के एक सेठ जी हैं, उसने अपनी लड़की को एक बूढ़े के पास दस हजार रुपये में बेच दिया है। दो हजार रुपया लेकर वह हरिद्वार आया है कि पाप का प्रायश्चित करने के लिये भण्डारा कर दे। महात्मा जी ने इस बात को सुन कर कहा कि यही वह लड़की है जो तुम्हें दिखाई देती है। तुमने जो कुछ खाया वह पुण्य भाव से दिया हुआ दान नहीं था पाप की कमाई का एक भाग था। उस हतभाग्य लड़की का मूल्य! जब तक वह अन्न तुम्हारे शरीर से निकल नहीं जायेगा तब तक उस दुखी लड़की का दिखाई देना बन्द नहीं होगा। उस साधक ने रोते हुये पूछा कि महात्मा जी मुझे कोई उपाय बताइये क्योंकि मेरा चित्त बहुत अशान्त हो रहा है। महात्मा जी ने कहा कि किसी वैद्य से रेचक औषधि लेकर खालो ताकि वह पाप का अन्न तुम्हारे शरीर से निकल जावे। तीन दिन तक कोई आहार न लो, केवल पंचगव्य पीकर रहो। उसने ऐसा ही किया और तब उसका चित्त शान्त हुआ।

यह है पाप का अन्न खाने का परिणाम। पाप की कमाई का आहार लेने से आत्मा की अधोगति हो जाती है। आगे बढ़ता हुआ मनुष्य पीछे हट जाता है। मन की शान्ति मिट जाती है। चित्त उद्विग्न रहता है।

एक वीतराग महात्मा जंगल में रहकर योगानुष्ठान किया करते थे और त्याग व तपोमय जीवन व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति फैलने लगी और आस-पास के गाँव व नगर के लोग उनके पास दर्शनार्थ आने लगे। महात्मा जी ने यह नियम बना लिया था कि वे केवल सायंकाल चार बजे से ६ बजे तक दर्शनार्थियों से मिलते थे। और शेष समय अपने साधन में लगे रहते थे।

कुछ काल बाद उस प्रदेश के राजा ने उन महात्मा के बारे में सुना और उनके दर्शनार्थ उस जंगल को गया। महात्मा जी तो विरक्त थे ही उनके सामने क्या राजा क्या प्रजा सभी बराबर थे। उन्होंने सभी को समान रूप से उपदेश दिया। राजा उनके दर्शन व सत्संग से अत्यधिक प्रभावित हुआ और बहुधा उनके आश्रम को जाने लगा।

एक बार राजा अपने परिवार के सभी लोगों को साथ लेकर आया और निवेदन किया कि महाराज किसी दिन आप नगर में चलकर हमारे भवन को भी पवित्र कर दीजिए। महात्मा जी ने कहा कि राजन! हम तो उदासी साधु है। हमको नगर गाँव या राजभवन से क्या मतलब है। हम तो इसी कुटिया में आनन्द मनाते हैं। राजा और रानी ने महात्मा जी के चरण पकड़ लिए और आग्रह किया कि महाराज! आपके चरण रज से हमारा निवास स्थान पवित्र हो जायेगा। अतः आप एक बार

राजभवन तक चलने का कष्ट अवश्य करें, महात्मा तो सहज चित्त व दयालु होते हैं। द्रवित हो गये और कहा कि किसी दिन आजावेंगे।

कालान्तर में महात्मा जी ने राजभवन जाने का निश्चय किया और राजा को सूचना भेज दी। फिर तो राजभवन में स्वागत की तैयारी होने लगी और महल को विशेष रूप से सजाया जाने लगा। नियत तिथि पर महात्मा जी पधारे उनका खूब स्वागत किया गया और उन्हें राजभवन के एक आरामदायक कक्ष में ठहराया गया। महात्मा जी की हर सुविधा पर विशेष ध्यान दिया गया। राजा व उनके परिवार के लोग सदैव उनकी सेवा-सत्कार में लगे रहे। सायंकाल उन्हें सुन्दर से सुन्दर भोजन, फल रसादि पदार्थ दिये गये। रात देर तक राज भवन के सभी लोग महात्मा जी के सत्संग से लाभ उठाते रहे।

महात्मा जी प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठे। उनके शौच स्नान की व्यवस्था पास ही में थी। उन्होंने स्नानघर में बड़े आनन्द के साथ स्थान किया और जब उसमें से चलने लगे तो उनकी दृष्टि दीवार पर टंगे एक हार पर पड़ी। हाथ में लेकर देखा तो वह हीरों का बहुमूल्य हार था। महात्मा जी ने सोचा इसे ले चला जाय। केवल इस हार से हमारा जीवन आनन्द पूर्वक कट जावेगा। और हमको भिक्षा मांगने का कष्ट नही उठाना पड़ेगा। ऐसा सोचकर उन्होंने हार अपनी झोली में छिपा लिया और अपने कमरे में आ गये।

प्रातः महात्मा जी की विदाई का अवसर आ गया। राज परिवार के सभी लोगों ने महात्मा जी को आदर के साथ दूर तक जा कर विदा किया। राजा ने बार-बार आग्रह किया कि महाराज! आप यदाकदा आते रहियेगा और दास पर कृपा बनाये रखियेगा।

विदाई के कुछ देर बाद रानी को अपने हार की सुध आई और वे स्नानागार में गईं तो वहाँ हार का पता नही था। फिर अपने कमरे व अन्य स्थानों पर तलाश किया मगर हार का पता नही चला। यह खबर राजभवन में फैल गई और बड़ी सरगर्मी से हार की तलाश होने लगी। रानी ने कहा कि हार इसी स्नानघर में टांग दिया था। किसी नौकर ने ही चुरा लिया है। राजा ने कहा कि स्नान घर में केवल महात्मा जी गये थे और कोई गया ही नही। महात्मा जी तो हार ले नहीं जा सकते। फिर तो नौकरों पर डांट पड़ने लगी और हार को ढूँढ़ने के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त कर दिये गये।

उधर महात्मा जी कुटिया पर पहुँचे तो उनके पेट में दर्द उठा और वे शौच के लिए दौड़े। उन्हें दस्त आने लगा और वे बार-बार शौच के लिए भागने लगे। सायं-काल तक उन्हें पचासों दस्त आये और तब जाकर उनका पेट थमा। सायंकाल उनका चित्त स्वस्थ हुआ तो उन्होंने झोली से हार निकाला और उसे लेकर राज भवन की ओर दौड़े और वहाँ जाकर द्वारपाल से कहा कि राजा को सूचना दे दो कि महात्मा जी आए है। राजा ने जब सुना कि महात्मा जी पधारे हैं तो दौड़ा हुआ आया और उन्हें महल के भीतर ले गया और पूछा कि महाराज ! आप तो प्रातःकाल ही यहाँ से गये थे, फिर सायं को कैसे आने की कृपा की, जो सेवा हो बताइये मै उसे पूरा करने को तैयार हूँ।

क्रमशः

❊❊❊

भजन

ऐसे है प्रभु जी पतित उद्धारण हार

कभी समाधि जाकर के नैपाल में आप लगाते थे
दिन महिनों की क्या गिनती थी वर्षों वही बिताते थे
डूब ध्यान में जाते थे जब पिये ना खाना खाते थे
सर्दी के मौसम में दयालु बर्फों में ढक जाते थे
वहाँ पर भी सुनते भक्तों की आर्त भरी पुकार......

दर्द भरी आवाज कान में भक्तों की सुन पाते थे
तुरंत समाधि खुल जाती हाथों से बर्फ हटाते थे
भक्ति के वश फेर दयालु नंगे पैरों आते थे
दुखियों के दुख हरने में प्रभु अरसा नहीं लगाते थे
फिर भी हम सब तुम को स्वामी कहें जगदाधार.....

कुछ और विलक्षण बातें भी कुछ लोग हमें बतलाते थे
ग्राम सवांई में जब कुश्ती आप लड़ाते थे
उन्हीं दिवस पर लोगों को तुम गंगा जी पर पाते थे
कुछ कहते थे स्वामी जी आकाश मार्ग उड़ जाते थे
आज तलक भी तेरी लीला का कोई ना पाया पार....

शक्ति थी ऐसी प्रबल कि वरदान जो तुमसे पाते थे
जो कुछ मुख से निकल गया बस वही काज हो जाते थे
मौहताज दरिद्र लाखों प्रभुजी जग में धनवान कहाते थे
अन्धे लंगड़े बहिरे लूले पा दुआ तेरा गुण गाते थे
लक्ष्मी नारायण कौशल को भव से पार उतार.......

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ....

....

....

नायात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

मुण्डकोपनिषद् ३/२/३

अर्थात्—यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। यह जिसको स्वीकार कर लेता है उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह परमात्मा उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विमल गजानन्द शर्मा द्वारा कर्मभूमि प्रिन्टिंग प्रेस, बराई गली, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय प्रकाशन एवं प्रिन्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326